आई एस एस एन : 0972-169X
पंजीयन क्रमांक 70269/98 के अंतर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत
डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल : 11360/2002

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका

ड्रीम 2047

मार्च 2002 खण्ड 4 अंक 6

इस अंक में

संपादकीय

☞ अंतरिक्ष में चालीस वर्ष

☞ भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम : डॉ. कस्तूरीरंगन से ई–मेल साक्षात्कार

☞ रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड आधुनिक रॉकेट विद्या का अग्रदूत

☞ पास्कल और उनका त्रिकोण

☞ समुद्री जैविक अनुसंधान केन्द्र

विज्ञान प्रसार समाचार

विज्ञान प्रसार द्वारा ब्रेल लिपि में लोकप्रिय विज्ञान–पुस्तकों का प्रकाशन

विज्ञान प्रसार द्वारा नेत्रहीनों के लिए प्रकाशित ब्रेल–पुस्तकों के पहले सेट का विमोचन विज्ञान एवं तकनीकी विभाग के माननीय केन्द्रीय राज्यमंत्री, श्री बच्ची सिंह रावत द्वारा 27 फरवरी, 2002 को 'राष्ट्रीय विज्ञान दिवस' कार्यक्रम के अवसर पर टेक्नालॉजी भवन में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मानव संसाधन विकास, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा महासागर विकास के केन्द्रीय मंत्री प्रो. मुरली मनोहर जोशी, प्रो. वी. एस. रामामूर्ति, सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, और डॉ. (श्रीमती) मंजू शर्मा, सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग भी उपस्थित थे। माननीय मंत्री जी ने ब्रेल पुस्तकों की कुछ प्रतियां कार्यक्रम में आए नेशनल एसोसिएशन फॉर दि ब्लाइंड के दो बच्चों को भेंट की। (चित्र : पृष्ठ 12 पर)

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के माननीय राज्य मंत्री श्री बच्ची सिंह रावत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के माननीय केन्द्रीय मंत्री प्रो. मुरली मनोहर जोशी की उपस्थिति में विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित ब्रेल पुस्तकों का विमोचन करते हुए। साथ में हैं : प्रो. वी.एस. रामामूर्ति, सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग एवं डॉ. (श्रीमती) मंजू शर्मा, सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग

विज्ञान प्रसार ने उन भाई–बहनों के लिये, जो देख नहीं सकते या जिनकी दृष्टि क्षीण हैं, विज्ञान विषयक ब्रेल पुस्तकें प्रकाशित की हैं। ये हैं : ''खेल–खेल में'', ''कहानी माप–तौल की'' तथा अंग्रेजी में 'लेट्स सिंग एण्ड प्ले'। विज्ञान प्रसार के कुछ और लोकप्रिय विज्ञान संबंधी प्रकाशनों को ब्रेल में लाना प्रस्तावित है।

विज्ञान प्रसार ने अब तक हिंदी, अंग्रेजी तथा भारत की अन्य भाषाओं में 80 पुस्तकें प्रकाशित की हैं। विज्ञान के क्षेत्र में भारत की विरासत, लोकप्रिय महत्वपूर्ण तथा जानी मानी दुर्लभ पुस्तकों का पुन: प्रकाशन, स्वास्थ्य, पर्यावरण, वैज्ञानिकों की जीवनगाथा, विशेषज्ञों द्वारा अनेक विषयों पर लिखी गयी पुस्तकों तथा विशेषत: बच्चों के लिए लिखी गयी पुस्तकों का प्रकाशन विज्ञान प्रसार के प्रकाशन–कार्यक्रम की मुख्य उपलब्धियां हैं।

एन.एस.टी.एम.आई.एस. की नयी वेब–साइट

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के नेशनल साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी मैनेजमेंट इनफॉरमेशन सिस्टम (एन.एस.टी.एम.आई.एस.) ने अपनी वेब–साइट www.nstmis-dst.org को इंटरनेट पर खोला है। इस साइट की रूपरेखा एवं विकास का कार्य विज्ञान प्रसार ने किया। इस साइट का उद्घाटन विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के राज्य मंत्री माननीय श्री बच्ची सिंह रावत जी ने 28 फरवरी 2002 को राष्ट्रीय विज्ञान दिवस के अवसर पर टेक्नोलॉजी भवन में किया। इस अवसर पर डी.एस.टी. के सचिव प्रो. वी.एस. रामामूर्ति, प्रो. वाई.एस. राजन, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद, अध्यक्ष एन.एस.टी.एम.आई.एस. व डॉ. वी.बी. काम्बले, निदेशक, विज्ञान प्रसार उपस्थित थे।

इस साइट का मुख्य उद्देश्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्रियाकलापों में सलंग्न साधन, श्रम–शक्ति और वित्त की निरन्तर रूप से सूचना प्रदान करना है। इस साइट की विशेषताएं निम्न हैं :

- एन.एस.टी.एम.आई.एस. की उत्पत्ति, क्रियाकलाप और देश में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी योजनाओं में इसका मुख्य कर्त्तव्य

विज्ञान प्रसार समाचार ....पृष्ठ 12 पर जारी

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के माननीय केन्द्रीय राज्य मंत्री, श्री बच्ची सिंह रावत (एन.एस.टी.एम.आई.एस) की वेबसाइट का 28 फरवरी 2002 को उद्घाटन करते हुए। साथ में हैं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के सचिव प्रो. वी. एस. रामामूर्ति (बाएं) और डॉ. लक्ष्मण प्रसाद (दाएं)

...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें...वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक...

विज्ञान प्रसार के लिए डॉ. सुबोध महंती द्वारा सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से रैक्मो प्रेस प्रा. लि., सी–59, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–I, नई दिल्ली–110 020 द्वारा मुद्रित
सम्पादक : डॉ. विनय बी. काम्बले

वैज्ञानिक नियम और समाज

''उसे एक हल्का सा धक्का दो, नहीं तो उसकी जड़ता समाप्त नहीं होगी!'' ''एक बार कुछ संवेग प्राप्त कर लेने के बाद वह अपने आप चलता रहेगा!'' ''उसे मत मारो वरना वह पलट कर वार करेगा!'' ''आज का विश्व इतना प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है कि केवल सर्वोत्तम लोग ही जीवित रह सकते हैं!'' ''सभी व्यक्ति हर तरह का काम नहीं कर सकते, केवल निश्चित प्रकार के लोग ही निश्चित प्रकार का काम कर सकते हैं!'' ''जब तक जान–बूझकर प्रयास नहीं किया जाता, परिस्थिति बिगड़ती ही जाएगी!'' प्रायः हम इस प्रकार के मुहावरे सुनते रहते हैं। वास्तव में प्रतिदिन बातचीत में हमारे द्वारा प्रयोग किये गये इस प्रकार के और बहुत–से अन्य प्रकार के मुहावरे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त हमारे अनुभवों से उत्पन्न होते हैं। इस जीवंत विश्व में इन कथनों का शायद ही कोई अपवाद होता हो। हम उन्हें ''नियम'' के रूप में स्वीकार कर लेते हैं' जो मानव व्यवहार और फलतः समाज को नियंत्रित करते हैं। विज्ञान के औपचारिक अध्ययन के दौरान हम प्राकृतिक घटनाओं को नियंत्रित करने वाले नियमों से परिचय प्राप्त करते हैं। कुछ समय बाद हम यह महसूस करने लगते हैं कि विज्ञान के नियम विज्ञान के अलावा दूसरे क्षेत्रों में भी समान रूप से लागू होते हैं चाहे वह समाज से संबंधित हो या पारस्परिक–वैयक्तिक व्यवहार से। किसी विशेष समय पर, हम वैज्ञानिक नियमों की सार्वभौमिकता तथा मानव गतिविधि के प्रायः सभी क्षेत्रों में उनकी उपयोगिता के बारे में पूर्णतः सहमत हो जाते हैं। हम यह विश्वास करने को प्रेरित होते हैं कि जीवन में प्राप्त हमारे अच्छे या बुरे अनुभव वास्तव में इन्हीं नियमों के प्रकटीकरण हैं।

परिणाम यह होता है कि हम प्रायः सभी सामाजिक घटनाओं का विश्लेषण इन्हीं 'सार्वभौम नियमों' के संदर्भ में करते हैं। क्रमशः हम यह विश्वास विकसित करने को प्रेरित होते हैं कि ये ही वे नियम हैं जो मानव प्रकृति को समझने के मूल तत्व हैं। सच में, हम मानव व्यवहार में न्यूटन के गति के नियमों के लागू होने से आश्चर्य का अनुभव करते हैं, जब हम यह बात करते हैं कि मानसिक जड़ता दूर करने के लिए एक हल्का धक्का दो! तब वस्तुतः वहां न्यूटन की गति का प्रथम नियम लागू होता है। जब किसी व्यक्ति द्वारा चोट पहुंचायी जाती है, तब शारीरिक रूप से या क्रोध भरे शब्दों के साथ प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति न्यूटन के गति के तीसरे नियम की अभिव्यक्ति होती है। जब हम यह कहते हैं कि वर्तमान विश्व में केवल सर्वोत्तम का ही अस्तित्व संभव है, तो निश्चित रूप से हम डार्विन के प्रसिद्ध नियम ''योग्यतम की उत्तरजीविता'' अर्थात् 'सरवाइवल ऑफ दि फिटेस्ट' की बात कर रहे हैं। 'एक निश्चित काम को पूरा करने के लिए कुछ निश्चित प्रकार के लोगों की ही जरूरत होती है' यह कथन वस्तुतः फिर से डार्विन के प्राकृतिक चयन सिद्धांत की ओर ही इंगित करता है। अंततः, यह कथन कि 'सतत और सचेतन प्रयास नहीं करने से व्यवस्था और अनुशासन का ह्रास ही होता है' द्वितीय ऊष्मागतिकी नियम की ही अभिव्यंजना है। वास्तव में, विज्ञान के अलावा दूसरे क्षेत्रों में भी वैज्ञानिक नियमों के प्रयोग के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं।

हालांकि सामाजिक संदर्भों में विज्ञान के नियमों को लागू करने के दौरान पर्याप्त सावधानी बरतने की जरूरत होती है। समाज में जो भी घटना घटित होती है, वह कई समकालिक जटिल घटनाओं का, या एक के बाद एक द्रुत गति में घटती हुई अनेक घटनाओं का परिणाम होती है। इस प्रकार कोई सामाजिक घटना एक ही अथवा अल्प समय में अपने प्रभाव क्षेत्रों के अंतर्गत कार्यशील विभिन्न वैज्ञानिक नियमों का परिणाम होती है। किसी सामाजिक घटना या परिघटना को समझने और उसको विश्लेषित करने के लिए सिर्फ कोई एक विशेष वैज्ञानिक नियम का सहारा लेना और शेष नियमों को छोड़ देना भ्रांतिपूर्ण होगा।

एक यही उदाहरण लें। दो भिन्न समुदायों के बीच होते हुए कलह को सामान्यतः न्यूटन के तृतीय नियम की परिणति माना जाता है। परन्तु अगर समयोचित कार्रवाई न की जाये तो यह संभावना हमेशा बनी रहती है कि परिस्थिति और भी बिगड़ जाये! अगर ऐसा हुआ तो यह उष्मागतिकी के द्वितीय नियम की अभिव्यक्ति मानी जाएगी।

प्रसंगवश, इतिहास में 17वीं एवं 18वीं शताब्दियों की अवधि के दौरान– जिनमें गैलीलियो और न्यूटन विद्यमान थे– दार्शनिक सत्य के लिए जानने की सर्वोत्तम विधि के रूप में तर्क अथवा विचार के प्रयोग पर बल देते थे, एवं सावधानीपूर्वक किये गये प्रयोग एवं अवलोकन पर जोर देते हुए वैज्ञानिक विधियों पर अधिकांश विश्वास करते थे। इसीलिए इसे 'तर्क युग' (द एज ऑफ रीज़न) कहा गया। इन दार्शनिकों ने सामाजिक अन्याय, अंधविश्वास और अज्ञानता पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने उनको दोषी माना जो अपने निहित स्वार्थ एवं वैयक्तिक शक्ति को बनाये रखने के लिए दूसरों को अज्ञानता के परदे के पीछे रखते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति के पास योजनाएं बनाने एवं उनको सफल करने के लिए तर्कशक्ति होती है और कारणों को समझने की क्षमता होती है। हालांकि बाद में लोगों के दृष्टिकोण और मूल्य व्यवस्था में काफी बदलाव आये। उन्होंने कारण के बजाय मूल्य की अनुभूति को अपनाया तथा अनुशासन, व्यवस्था एवं नियंत्रण के बजाय भावावेश, व्यक्ति विशेषता एवं आवेग को प्राथमिकता दी।

वास्तव में, जटिल सामाजिक घटनाओं को समझने और यह जानने के लिए कि सामाजिक ढांचे में वैज्ञानिक नियम किस प्रकार कार्य करते हैं, आज ''तर्क युग'' की सबसे ज्यादा जरूरत है। वैज्ञानिक ज्ञान और विज्ञान के नियम समाज में शांति व व्यवस्था कायम करने तथा जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने में हमें सहायता प्रदान कर सकते हैं। हमें अपने कर्मों अथवा अकर्मों को न्यायसंगत सिद्ध करने के लिए महान् वैज्ञानिकों के नामों को उछालने से परहेज करना चाहिए। हमें अपनी दुःशंकाओं और कर्मों के लिए वैज्ञानिक सिद्धांतों को दोषी करार देने से बाज आना चाहिए।

❐ **विनय बी. काम्बले**

सम्पादक : विनय बी. काम्बले

विज्ञान प्रसार
पत्र व्यवहार के लिए पता : सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 6967532, फैक्स: 6965986
ई–मेल : vigyan@hub.nic.in
वेबसाइट : http://www.vigyanprasar.com

अंतरिक्ष में चालीस वर्ष

❑ टी.वी. जयन

आप जो कर सकते हैं या सोच सकते हैं, आरंभ करें पूरी क्षमता से, बस इसमें प्रतिभा, शक्ति व तर्क शामिल करें। *– गोथे*

कुछ लोग ऐसे हैं जो एक विकासशील देश में अंतरिक्ष संबंधी गतिविधियों की प्रासंगिकता पर प्रश्न उठाते हैं। जहां तक हमारी बात है, हमारा उद्देश्य अस्पष्ट नहीं है। हम उन आर्थिक रूप से विकसित देशों से प्रतिद्वंद्विता करने का गुमालता नहीं पाले हुए हैं जो मानवित अंतरिक्ष उड़ानों या चंद्रमा या ग्रहों के अन्वेषण में संलग्न हैं। किंतु हम पूरी तरह से आश्वस्त है कि यदि हमें विश्व समुदाय में एक अर्थपूर्ण राष्ट्र की भूमिका निभानी है, तो हमारे देश में विद्यमान मानव व समाज की समस्याओं के समाधान के लिए उन्नत प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के मामले में किसी भी देश से पीछे नहीं रहना है। *– विक्रम साराभाई*

एक दर्जन प्रचालनात्मक उपग्रह अपनी कक्षा में घूम रहे हैं, जिनमें से करीब आधे उपग्रहों को अपने रॉकेटों द्वारा ही प्रक्षेपित किया गया है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है, वह भी इस तथ्य का ध्यान रखते हुए कि ऐसा न्यूनतम बजट के बावजूद किया जा सका है। भू–तुल्यकालिक एवं ध्रुवीय कक्षाओं में स्थापित ये उपग्रह देश के प्रत्येक क्षेत्र व कोने को संचार व प्रसारण सेवाएं पहुंचाने में सहायता करने के अलावा राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय नियोजन में मदद करने हेतु प्राकृतिक संसाधनों और मौसम संबंधी सूचनाओं पर बहुमूल्य सुदूर संवेदी आंकड़े भी उपलब्ध कराते हैं।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम, जिसकी शुरुआत 1963 में संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रीय वैमानिकी एवं अंतरिक्ष प्रशासन (नासा) से अर्जित एक छोटे परीक्षण रॉकेट के प्रक्षेपण के साथ हुई थी, तब उच्चतम बिंदु पर जा पहुंचा जब भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों ने 18 अप्रैल, 2001 को श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केंद्र से 401 टन के भू–तुल्यकालिक उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी) को सफलतापूर्वक छोड़ा गया। यह भारत की भूमि से छोड़ा गया अब तक का सबसे बड़ा प्रक्षेपण यान या रॉकेट है। जीएसएलवी की प्रथम विकासात्मक उड़ान की सफलता का अर्थ यह है कि भारत ने 36,000 किलोमीटर ऊंचाई पर स्थित कक्षा में 2000 किलोग्राम भार तक के संचार उपग्रहों के प्रक्षेपण की क्षमता, हासिल कर ली है। इस सफलता से अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के मामले में आत्मनिर्भर बनने का भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान के जनक विक्रम साराभाई का सपना साकार हुआ है।

वर्तमान समय में भारत के पास छः इनसैट (इंडियन सैटेलाइट्स का संक्षिप्त रूप) उपग्रह, यथा– इनसैट–3सी, इनसैट–3बी, इनसैट–2ई, इनसैट–2डीटी, इनसैट–2सी तथा जीएसएलवी की एकमात्र उड़ान द्वारा भू–तुल्यकालिक कक्षा में स्थापित ग्रामसैट हैं। ये बहुद्देशीय उपग्रह संचार, प्रसारण एवं मौसम विज्ञान संबंधी सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। पिछले सात वर्षों के दौरान सभी अन्य उपग्रहों का प्रक्षेपण फ्रेंच गुयाना स्थित कौरू से यूरोपीय अंतरिक्ष एजेंसी के एरियन रॉकेटों द्वारा किया गया है। इस वर्ष 22 जनवरी को कक्षा में स्थापित इनसैट–3सी, इनसेट–2सी को प्रतिस्थापित करेगा जिसकी जीवन अवधि 2002 के अंत तक समाप्त हो जायेगी। इनसैट–2ई के 17सी–बैंड ट्रांसपोंडरों में से 11 को अंतर्राष्ट्रीय दूरसंचार उपग्रह संगठन (इंटेलसैट) को पट्टे पर दिया गया है।

विक्रम साराभाई (1919–1971)

इसी प्रकार, वर्तमान समय में ध्रुवीय सूर्य–तुल्यकालिक कक्षा में भारत के छः सुदूर संवेदी उपग्रह स्थापित हैं। आईआरएस–1बी, आईआरएस–1सी, आईआरएस–1डी, आईआरएस–पी3 नामक इन आईआरएस (इंडियन रिमोट सेंसिंग का संक्षिप्त रूप) उपग्रहों और ओसनसैट का उपयोग प्राकृतिक संसाधन सर्वेक्षण एवं प्रबंधन के लिए किया जाता है। इसके अलावा भारत ने अक्टूबर 2001 में सूर्य–तुल्यकालिक कक्षा में एक प्रौद्योगिकी प्रायोगिक उपग्रह (टीईएस) को भी स्थापित किया। आईआरएस–1बी और आईआरएस–1सी को छोड़कर शेष सभी आईआरएस उपग्रहों को स्वदेश निर्मित ध्रुवीय उपग्रह प्रक्षेपण यान (पीएसएलवी) द्वारा कक्षा में स्थापित किया गया है। पीएसएलवी का सबसे पहला प्रक्षेपण 1993 में किया गया था। अब तक सिर्फ एक असफलता को छोड़कर पीएसएलवी के क्रमशः सभी प्रक्षेपण सफल रहे हैं। तब से पीएसएलवी एक विश्वसनीय प्रक्षेपण यान के रूप में उभरा है। इसीलिए जर्मनी, बेल्जियम और दक्षिण कोरिया जैसे तीन प्रमुख देशों ने ध्रुवीय कक्षा में अपने वैज्ञानिक पेलोड को स्थापित करने के लिए पीएसएलवी की सेवाएं ली हैं।

साठ के दशक के प्रारंभ में अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में भारत के लिए संकल्पना का ताना–बाना बुनने वाले साराभाई को इस बात का कोई संदेह नहीं था कि प्रौद्योगिकी के रूप में विज्ञान की एक अच्छी समझ और उसका उचित इस्तेमाल किसी भी देश के विकास के लिए काफी आवश्यक है। इस स्पष्ट सोच से उनको उन लोगों का सामना करने में सहायता मिली जो भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में कदम रखने के प्रति अपनी भृकुटियां ताने रहते थे क्योंकि उस समय भारत के कई लोगों को दो वक्त का भोजन नहीं पा रहा था। विक्रम साराभाई भी यह स्वीकार करते थे कि सिर्फ प्रतिष्ठा के लिए भारत को नये ओर फैशनेबल क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान की पहल करने की गलती नहीं करनी चाहिए। वे महसूस करते थे कि किसी भी गतिविधि के क्षेत्र का चयन निर्धारित राष्ट्रीय लक्ष्य को प्राप्त करने में वह कितना सहायक होगा इस बात पर निर्भर करना चाहिए। इन लक्ष्यों दिशा में, उन्होंने भारत मे ंअंतरिक्ष अनुसंधान के तीन विशेष उपयोगों को पहचानाः सुदूर संवेदन, संचार और मौसम विज्ञान। आज भी ये तीन क्षेत्र ही भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रमुख प्रयोजन (उद्देश्य) हैं।

साराभाई के चिरस्थायी प्रयास को धन्यवाद! उन्हीं के प्रयासों से भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की विनम्र शुरुआत केरल में त्रिवेंद्रम शहर (अब तिरुवनंतपुरम) के बाहर मछली मारने वालों के एक ऊंघते उपग्राम में तब हुई, जब 1959 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (आईएनसीओएसपीएआर) ने चार साल बाद एक परीक्षण रॉकेट प्रक्षेपण सुविधा स्थापित करने के लिए इस स्थान का चयन किया। छह युवा वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों के एक दल को, जिसमें से सभी 20 से 29 वर्ष के आयु वर्ग में थे, नासा से खरीदे गये नाइक–अपाचे रॉकेट के थुम्बा से प्रक्षेपण की शुरुआत के पहले प्रशिक्षण के लिए अमेरिका भेजा गया। उनके दुःख, तकलीफ और अंत में मिली मीठी सफलता को भारतीय विज्ञान के इतिहास के आख्यान में अंकित किया गया।

चार वर्ष के बाद, देश में ही डिजाइन एवं निर्मित किये गये पहले परीक्षण रॉकेट (रोहिणी–75), जिसका वजन मात्र 10 किलोग्राम और व्यास 75 मिलीमीटर था, को थुम्बा विषुवतरेखीय रॉकेट प्रक्षेपण स्टेशन (टीआरएलएस) से प्रक्षेपित किया गया। इसने 4.2 किलोमीटर की ऊंचाई प्राप्त की। रोहिणी –75 (आर. एच. 75) 40,000 गुने भारी जीएसएलवी से तुलना करने पर एक खिलौना मात्र लगता है, किंतु रॉकेटरी के क्षेत्र में एक मजबूत बुनियाद रखने में भारतीय अंतरिक्ष वैज्ञानिकों को इससे काफी सहायता मिली। बाद के वर्षों में भारत ने स्वदेश निर्मित प्रणोदकों का इस्तेमाल करके क्रमशः बड़े और भारी परीक्षण रॉकेटों का निर्माण और प्रक्षेपण किया। पांच वर्षों के अंतराल में भारतीय रॉकेटों का प्रक्षेपण भार 60 किलोग्राम से बढ़कर दो टन से अधिक हो गया। रॉकेट में प्रयुक्त होने वाली उपप्रणालियों और घटकों की पर्याप्त बढ़ोत्तरी भी दर्ज की गयी।

वैज्ञानिकों ने शीघ्र ही रॉकेट कार्यक्रम के लिए उपयुक्त प्रणोदकों के विकास एवं उत्पादन के महत्त्व को स्वीकार किया। प्रणोदक रॉकेट के लिए ऊर्जा की आपूर्ति करते हैं। इनको सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है– पहला, ठोस और दूसरा, द्रव। परीक्षण रॉकेट साधारणतया ठोस प्रणोदकों का उपयोग करते हैं जबकि भारी उपग्रहों का प्रक्षेपण करने वाले रॉकेटों में ठोस एवं द्रव प्रणोदकों का संयोजन इस्तेमाल किया जाता है। हालांकि ठोस प्रणोदकों का उत्पादन तुलनात्मक रूप से आसान होता है किंतु इसमें एक अंतर्निहित कमी भी होती है और वह यह कि इसको एक बार प्रज्ज्वलित करने के बाद इसे बुझाया नहीं जा सकता। दूसरी तरफ, द्रव प्रणोदक प्रौद्योगिकी जटिल होती है, लेकिन द्रव प्रणोदकों की ऊर्जा दक्षता उच्च होती है।

प्रक्षेपास्त्र प्रौद्योगिकी का एक हिस्सा होने की वजह से विदेशों में प्रणोदकों के विकास की तकनीक को काफी सुरक्षित रखा जाता है, इसीलिए भारत प्रारंभ से ही स्वदेशी प्रणोदक प्रौद्योगिकी विकसित करने संबंधी कार्यक्रम पर काम कर रहा था। थुम्बा से प्रक्षेपित आरएच–75, आरएच–100 और आरएच–125 (संख्या रॉकेट के व्यास को इंगित करता है) जैसे प्रारंभ के कुछ परीक्षण रॉकेटों में कोरडाइट (नाइट्रोग्लीसरिन और नाइट्रोसेल्यूलोज का मिश्रण) का प्रयोग किया गया, जिसको समीपवर्ती राज्य तमिलनाडु के एक कारखाने से खरीदा गया था। इसके बाद ही संस्था में ही एक नये प्रणोदकों के विकास का प्रयास दो सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा अलग–अलग किया गया– वसंत गोवरिकर, जो बाद में विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केंद्र (वीएससी), तिरुवनंतपुरम के निदेशक और विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) के सचिव बने तथा ए.ई. मुथुनयगम, जो इस समय महासागर विकास विभाग (डीओडी) के सचिव हैं। भारतीय रॉकेटों के लिए प्रणोदक बनाने के लिए साराभाई द्वारा आग्रह करने के पहले सुप्रसिद्ध केमिकल इंजीनियर गोवरिकर यूके परमाणु ऊर्जा प्राधिकरण के साथ काम कर रहे थे। कुछ वर्ष बाद गोवरिकर की पहली प्रयोगशाला थुम्बा में सेंट मेरी मैडगेलीन चर्च के समीप एक गौशाला में स्थापित हुई।

जी.एस.एल.वी. का प्रक्षेपण

इन दोनों टीमों को चाहे जिस भी स्थिति में काम करना पड़ रहा था, उन्होंने देश में उपलब्ध कच्चे माल पर अधारित नये ठोस प्रणादकों को अलग–अलग विकसित करने में सफलता प्राप्त की। देश में अंतरिक्ष अनुसंधान के इन प्रारंभिक वर्षों के दौरान साराभाई और उनके युवा वैज्ञानिकों के दल विभिन्न वायुमंडलीय घटनाओं के लिए हल्के परीक्षण रॉकेटों का प्रयोग करते थे।

परीक्षण रॉकेटों का डिजाइन तैयार करने और उसे निर्मित करने में मिली उल्लेखनीय सफलता ने भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो), जिसको पहले अगस्त 1969 में परमाणु ऊर्जा विभाग (डीएई) के एक अंग के रूप में गठित किया गया था, को उपग्रह प्रक्षेपण यान (एसएलवी) पर काम प्रारंभ करने के लिए प्रोत्साहित किया। 1966 में एक विमान दुघटना में होमी जहांगीर भाभा की अचानक मृत्यु के बाद साराभाई ने डीएई के प्रमुख के रूप में पदभार संभाला। किंतु एक परीक्षण रॉकेट की तुलना में एक उपग्रह प्रक्षेपण यान काफी जटिल था। एक परीक्षण रॉकेट जो ईंधन के समाप्त होने तक अपने पेलोड का वहन करता है, के विपरीत एक प्रक्षेपण यान में जटिल निर्देशन व नियंत्रण प्रणाली होती है ताकि उपग्रह को एक निर्धारित कक्षा में स्थापित किया जा सके। इसके अलावा इसमें प्रणोदकों के विविध चरणों की भी आवश्यकता होती है।

इस प्रकार एसएलवी–3 नामक एक भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण यान की योजना बनायी गयी, जिसमें चार चरण होते थे और इन सभी में ठोस प्रणोदकों का इस्तेमाल होता था। साराभाई ने अपने साथ काम कर रहे चार युवा वैज्ञानिकों का चुनाव करके इन चरणों का डिजाइन तैयार करने का काम सौंपा। इन चार वैज्ञानिकों में गोवरिकर और मुथुनयगम के अतिरिक्त एम.आर. कुरुप और ए.पी.जे. अब्दुल कलाम शामिल थे। अब्दुल कलाम बाद में भारतीय निर्देशित प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के मुख्य शिल्पी और उसके बाद रक्षा मंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार और रक्षा अनुसंधान व विकास संगठन (डीआरडीओ) के प्रमुख बने। एसएलवी–3 केवल 17 टन का भार लेकर उड़ सकता था। इसमें ठोस प्रणोदक भी शामिल था, जो कुल भार का तीन–चौथाई था। 30 दिसंबर, 1971 को 52 वर्ष की आयु में साराभाई की असामयिक मृत्यु भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए संक्षिप्त किंतु एक प्रमुख क्षति साबित हुई। एक अद्वितीय द्रष्टा, साराभाई का विज्ञान, व्यवसाय और प्रशासन जैसे विविध क्षेत्रों में योगदान भारतीय इतिहास में अद्वितीय था। परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष अनुसंधान संबंधी कार्यों के प्रबंधन के अलावा वे पारिवारिक व्यवसाय को चलाने तथा अन्य क्षेत्रों में संस्थानों के सृजन के लिए भी समय निकाल लेते थे। उन्होंने जिन संस्थानों की स्थापना और उसकी परवरिश की उनमें से कुछ इस प्रकार हैं: भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला (पीआरएल), अहमदाबाद टेक्सटाइल औद्योगिक अनुसंधान संघ (एटीआईआरए), साराभाई अनुसंधान केंद्र तथा प्रचालन अनुसंधान समूह (ओआरजी), जो एक बाजार अनुसंधान संगठन है। उन्होंने कई निजी कंपनियों की भी स्थापना की। पीआरएल में उनके छात्र रहे पूर्व इसरो अध्यक्ष प्रो. यू.आर. राव का कहना है कि ''देश के साथ–साथ विश्व ने कई एक महान वैज्ञानिक या एक प्रशासक, उद्योगपति समाज सुधारक, प्रबंधक या एक कुशल राजनयिक को देखा है। विक्रम साराभाई के व्यक्तित्व में इन सभी भूमिकाओं का अद्भुत समावेश था। वे अर्थशास्त्र एवं प्रबंधकीय कौशल की अद्वितीय समझ के साथ नये संस्थानों एवं नवीन परंपराओं को स्थापित करने के लिए अपनी तीव्र इच्छाओं को समेकित करने में समर्थ थे। सबसे ऊपर वे काफी स्नेहिल एवं आकर्षक व्यक्ति थे। वे सर्वाधिक प्रतिकूल परिस्थितियों में भी हमेशा मुस्कुराते रहते थे और कभी संतुलन नहीं खोते थे।''

अंतरिक्ष भवन, बंगलौर : अंतरिक्ष विभाग इसरो का मुख्यालय

साराभाई के उपरांत, भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर के तत्कालीन निदेशक प्रो. सतीश धवन ने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम का कार्यभार संभाला, हालांकि बीच में छः महीने की संक्षिप्त अवधि के लिए इस कार्यक्रम के प्रमुख रहे। जून 1972 में अंतरिक्ष विभाग और अंतरिक्ष आयोग का गठन किया गया और इसरो को अंतरिक्ष विभाग के अंतर्गत लाया गया।

यदि साराभाई की संकल्पना ने भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की शुरुआत की तो प्रो. धवन ने उसे शक्ति प्रदान की। प्रो. धवन के नेतृत्व में साराभाई की संकल्पना सफल मिशनों की एक शृंखला के रूप में साकार हुई। एसएलवी–3 परियोजना उनमें से एक थी।

1973 तक एसएलवी–3 से संबंधित बहुत–सी उप प्रणालियों की डिजाइन को अंतिम रूप में दिया गया तथा इस परियोजना को एक प्रमुख राष्ट्रीय उद्यम के रूप में ग्रहण किया गया, जिसमें सार्वजनिक व निजी दोनों क्षेत्रों के लगभग 46 संगठन शामिल थे। अब्दुल कलाम, जिनकी टीम ने एसएलवी–3 के लिए संग्रथित चौथे चरण को सफलतापूर्वक डिजाइन किया था, को कार्यक्रम का परियोजना निदेशक नियुक्त किया गया। हालांकि प्रथम प्रायोगिक उड़ान के लिए मूलतः चार वर्ष के कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गयी थी, किंतु इसे पूरा करने में छः वर्ष का समय लगा। 10 अगस्त, 1979 को एसएलवी–3 की प्रथम उड़ान संपन्न हुई, लेकिन इसे सिर्फ आंशिक सफलता ही मिली। किंतु एक वर्ष से भी कम समय में एसएलवी–3 की द्वितीय प्रायोगिक उड़ान पूर्णतः सफल रही। इस बार इस उड़ान द्वारा पूर्वी तट पर नयी विकसित उपग्रह प्रक्षेपण सुविधा केंद्र श्रीहरिकोटा से सुदूर संवेदी उपग्रह रोहिणी को कक्षा में स्थापित किया गया।

इसरो में प्रो. धवन के प्रारंभिक वर्षों के दौरान बड़ी संख्या में कार्यक्रमों की पहल की गयी थी। स्वदेशी उपग्रहों का डिजाइन एवं विकास तथा अंतरिक्ष उपयोग संबंधी विविध परियोजनाएं उनमें से कुछ थीं। उनके इसरो में पदभार ग्रहण करने कुछ दिन पूर्व ही सोवियत संघ ने भारत के साथ उपग्रह प्रक्षेपण के लिए समझौता किया, जिसको इसरो देश में ही बनाने की योजना बना रहा था। यह वैज्ञानिक उपग्रह, जिसका नाम बाद में आर्यभट के नाम पर रखा गया, को निर्मित किया जाना था। आर्यभट एक प्रसिद्ध खगोलशास्त्री एवं गणितज्ञ थे, जो पांचवीं शताब्दी ई. में भारत में रहते थे। 350 किलोग्राम वजन वाले और 26 फलक वाले एक अद्वितीय संरचना के साथ इस उपग्रह के निर्माण का कार्य यू.आर. राव के नेतृत्व में 200 समर्पित वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों की एक टीम को सौंपा गया था। हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड, भारत इलेक्ट्रॉनिक्स लिमिटेड, इलेक्ट्रॉनिक्स एंड राडार डेवलप्मेंट इस्टेब्लिशमेंट, भारतीय विज्ञान संस्थान और अन्य निजी कंपनियों से आये इन विशेषज्ञों ने रात–दिन काम करके बैंगलोर के समीप पीन्या इंडस्ट्रियल इस्टेट में दो वर्ष और छः महीनों में प्रक्षेपण के लिए आर्यभट को तैयार कर दिया। इस उपग्रह को 19 अप्रैल, 1975 को रूसी प्रक्षेपण यान से प्रक्षेपित किया गया तथा 17 वर्षों के लिए 594 किलोमीटर की ऊंचाई पर पृथ्वी की वृत्तीय कक्षा में स्थापित किया गया। इस उपग्रह ने पांच वर्षों तक आंकड़ों का संप्रेषण किया, जबकि इसका सक्रिय जीवन मात्र छह महीने के लिए डिजाइन किया गया था। 10 फरवरी, 1992 को वायुमंडल में पुनः प्रवेश करते हुए आर्यभट ने पृथ्वी के 92,875 चक्कर लगाये। निश्चित रूप से प्रथम स्वदेशी डिजाइन उपग्रह की यह कोई छोटी

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान के मील के पत्थर

22 जनवरी, 2002	फ्रेंच गुयाना के कौरू से एरियन लाँचर द्वारा इनसैट – 3–सी का प्रक्षेपण।
22 अक्टूबर, 2001	पीएसएलवी द्वारा तीन उपग्रहों – प्रौद्योगिकी प्रायोगिक उपग्रह (टीईएस), जर्मनी के बर्ड और बेल्जियम के प्रोबा को उनकी निर्धारित कक्षाओं में प्रक्षेपण।
18 अप्रैल, 2001	श्रीहरिकोट्ट से जीसैट–1 के साथ जीएसएलवी–डी1 का पहला विकासात्मक प्रक्षेपण सफल।
22 मार्च, 2000	तीसरी पीढ़ी के इनसैट–3 शृंखला का पहला उपग्रह इनसैट–3बी का फ्रेंच गुयाना के कौरू से प्रक्षेपण।
26 मई, 1999	श्रीहरिकोट्ट से पीएसएलवी द्वारा कोरिया के किटसैट–3 और जर्मनी के डीएसआर–टूबसैट के साथ ओसनसैट (आईआरएस–पी4) का प्रक्षेपण।
3 अप्रैल, 1999	इनसैट–2 शृंखला के अंतिम उपग्रह इनसैट–2ईका कौरू (फ्रेंच गुयाना) से प्रक्षेपण।
जनवरी, 1998	अरबसैट से अर्जित इनसैट–2डीटी ने कार्य करना प्रारंभ किया।
4 अक्टूबर, 1997	4 जून, 1997 को प्रक्षेपण इनसैट–2डी निष्क्रिय हो गया। एक अंतर–कक्षीय उपग्रह अरबसैट–1सी, जिसका बाद में नाम इनसैट–2डीटी रखा गया, को इनसैट प्रणाली के कुछ कार्यों को आगे बढ़ाने के लिए नवम्बर 1997 में अर्जित किया गया था।
29 सितम्बर, 1997	पीएसएलवी के प्रथम प्रचालनात्मक उड़ान द्वारा आईआरएस–1डी को ध्रुवीय सूर्यकालिक कक्ष में स्थापित किया गया।
21 मार्च, 1996	पीएसएलवी के तीसरे विकासात्मक प्रक्षेपण द्वारा आईआरएस–पी3 को ध्रुवीय सूर्यकालिक कक्षा में स्थापित किया गया।
28 दिसम्बर, 1995	तीसरे प्रचालनात्मक भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रह आईआरएस–1सी का प्रक्षेपण।
7 दिसम्बर, 1995	एरियन रॉकेट द्वारा इनसैट–2सी का प्रक्षेपण।
15 अक्टूबर, 1994	आईआरएस–पी2 के साथ पीएसएलवी का दूसरा विकासात्मक प्रक्षेपण।
4 मई, 1994	स्रोस–सी2 के साथ एएसएलवी का चौथा विकासात्मक प्रक्षेपण। उपग्रह को उसकी कक्षा में स्थापित कर दिया गया।
20 सितम्बर, 1993	आईआरएस–1ई के साथ पीएसएलवी का पहला विकासात्मक प्रक्षेपण। उपग्रह को उसकी कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।
23 जुलाई, 1993	इनसैट–2 शृंखला के दूसरे उपग्रह 'इनसैट–2बी' का प्रक्षेपण।
10 जुलाई, 1992	इनसैट शृंखला की दूसरी पीढ़ी का स्वदेश निर्मित प्रथम उपग्रह 'इनसैट–2ए' का प्रक्षेपण।
20 मई, 1992	स्रोस–सी के साथ एएसएलवी का तीसरा विकासात्मक प्रक्षेपण। उपग्रह को कक्षा में स्थापित कर दिया गया।
29 अगस्त, 1991	द्वितीय प्रचालनात्मक सुदूर संवेदी उपग्रह आईआरएस–1बी का प्रक्षेपण।
12 जून, 1990	इनसैट–1डी का प्रक्षेपण।
21 जुलाई, 1988	इनसैट–1सी का प्रक्षेपण। नवम्बर 1989 में इसे छोड़ दिया गया (निष्क्रिय घोषित कर दिया गया)।
13 जुलाई, 1988	स्रोस–2 के साथ एएसएलवी का द्वितीय विकासात्मक प्रक्षेपण। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।
17 मार्च, 1988	प्रथम प्रचालनात्मक भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रह आईआरएस–1ए का प्रक्षेपण।
24 मार्च, 1987	स्रोस–1 उपग्रह के साथ एएसएलवी का प्रथम विकासात्मक प्रक्षेपण। उपग्रह को कक्षा में स्थापित नहीं किया जा सका।
3 मार्च, 1984	भारत के पहले अंतरिक्ष यात्री राकेश शर्मा एक रूसी अंतरिक्षयान द्वारा अंतरिक्ष में गये।
30 अगस्त, 1983	इनसैट–1बी का प्रक्षेपण किया गया।
17 अप्रैल, 1983	एसएलवी–3 के दूसरे विकासात्मक प्रक्षेपण द्वारा रोहिणी उपग्रह को कक्षा में स्थापित किया गया।
10 अप्रैल, 1982	इनसैट–1ए का प्रक्षेपण किया गया। इस उपग्रह को 6 सितम्बर, 1982 को निष्क्रिय कर दिया गया।
20 नवम्बर, 1981	भास्कर–II का प्रक्षेपण किया गया।
19 जून, 1981	एक प्रायोगिक भू–तुल्यकालिक संचार उपग्रह 'एप्पल' का सफलतापूर्वक प्रक्षेपण किया गया।
31मई, 1981	एसएलवी–3 की प्रथम विकासात्मक उड़ान द्वारा कक्षा में सुदूर संवेदी उपग्रह रोहिणी को स्थापित किया गया।
18 जुलाई, 1980	एसएलवी–3 का दूसरा प्रायोगिक प्रक्षेपण, रोहिणी उपग्रह को कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित किया गया।
10 अगस्त, 1979	रोहिणी टेक्नोलॉजी पेलोड के साथ एसएलवी–3 का प्रथम प्रायोगिक प्रक्षेपण। यह मिशन आंशिक रूप से असफल हो गया।
7 जून, 1979	पृथ्वी के अवलोकन के लिए एक प्रायोगिक उपग्रह भास्कर – II का प्रक्षेपण किया गया।
1977	उपग्रह दूरसंचार प्रायोगिक परियोजना (स्टेप) पूरी की गयी।
1975–1976	उपग्रह शैक्षिक टेलीविजन प्रयोग (साइट) संचालित किया गया।
19 अप्रैल, 1975	पहला भारतीय उपग्रह आर्यभट का प्रक्षेपण किया गया।
1 जून, 1972	अंतरिक्ष आयोग और अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की गयी। इसरो को अंतरिक्ष विभाग के अधीन लाया गया।
15 अगस्त, 1969	परमाणु ऊर्जा विभाग के तहत भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन किया गया।
2 फरवरी, 1968	टीईआरएलएस संयुक्त राष्ट्र को समर्पित हुआ।
1967	अहमदाबाद में उपग्रह दूरसंचार पृथ्वी स्टेशन की स्थापना की गयी।
1965	थुम्बा में उपग्रह विज्ञान व प्रौद्योगिकी केन्द्र (एसएसटीसी) की स्थापना की गयी।
21 नवम्बर, 1963	टीईआरएलएस से पहला परीक्षण रॉकेट प्रक्षेपित किया गया।
1962	परमाणु ऊर्जा विभाग के अधीन भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति (इनकॉस्पार) अस्तित्व में आयी तथा थुम्बा विषुवत रेखीय रॉकेट प्रक्षेपण स्टेशन (टीईआरएलएस) की स्थापना संबंधी कार्य प्रारंभ हुए।

प्रो. सतीश धवन

उपलब्धि नहीं है।

बाद में दो पृथ्वी अवलोकन उपग्रहों भास्कर–I और भास्कर–II को सोवियत संघ से क्रमशः 1979 और 1981 में प्रक्षेपित' किया गया था। ये उपग्रह तथा एसएलवी–3 से प्रक्षेपित रोहिणी उपग्रहों के साथ प्रचालनात्मक भारतीय सुदूर संवेदी शृंखला के उपग्रहों के अग्रदूत थे। जून 1981 में एरियन प्रक्षेपण यान द्वारा भू–तुल्यकालिक कक्षा में स्थापित एरियन पैसेन्जर पेलोड एक्सपेरीमेंट (एप्पल) नामक उपग्रह ने भारत को कुछ उल्लेखनीय अनुभव प्रदान किये, जिसकी जरूरत देश में ही द्वितीय पीढ़ी के इनसैट उपग्रहों के निर्माण में थी।

साराभाई की संकल्पना भारतीय कार्यक्रम की सबसे बड़ी संपत्ति रही है। साठ के दशक के प्रारंभ और मध्य में जब उपयोग आधारित उपग्रह संयुक्त राज्य अमेरिका में भी प्रायोगिक अवस्था में थे, तब साराभाई ने भारत के लिए उनकी लाभदायकता को तेजी से पहचाना। उन्होंने पहले से ही यह अनुमान लगा लिया था कि उपग्रह संचार, प्रत्यक्ष टेलीविजन प्रसारण, सुदूर संवेदन और मौसम विज्ञान के क्षेत्र में बहुत–सी सेवाएं प्रदान करने के लिए एक पूरक धरातल आधारित प्रणालियां लाभदायक साबित हो सकेंगी।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम शुरुआत से ही अनुप्रयोग–प्रेरित रहा है। उपग्रहों एवं प्रक्षेपण यानों का निर्माण उस साध्य का एक साधन थे, न कि स्वयं साध्य थे। इसे प्राप्त करने के लिए साराभाई ने एक सुस्पष्ट कदम–दर–कदम रणनीति बनायी थी। वे काफी स्पष्ट थे कि अनुप्रयोग विकास की शुरुआत करने के लिए इसरो को अपने उपग्रहों के लिए प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। इसके बदले शुरुआती चरण में विदेशी उपग्रहों का प्रयोग किया जाये ताकि अनुप्रयोग सिद्ध हो सकें, धरातल प्रणालियों को सही स्थान पर व्यवस्थित किया जा सके तथा नयी प्रौद्योगिकी से प्रयोगकर्त्ता और वैज्ञानिक सुपरिचित हो सकें। बाद में स्वदेशी प्रणालियों को बनाने के लिए इन प्रणालियों पर दक्षता हासिल की जा सके। इसरो ने इनसैट, आईआरएस, पीएसएलवी और जीएसएलवी जैसे अपनी सभी प्रमुख अंतरिक्ष परियोजनाओं में इसको कड़ाई से लागू किया।

सुदूर संवेदन उनमें से पहला अंतरिक्ष अनुप्रयोग था जिसे भारत में इस्तेमाल किया गया। केरल में नारियल बागानों के रोग 'रूट–विल्ट' के अध्ययन के लिए 1970 में एक हेलिकॉप्टर से अवरक्त फिल्म का इस्तेमाल करते हुए एक हवाई सर्वेक्षण किया गया। इसरो ने फ्रांस के सहयोग से एक अवरक्त स्कैनर भी विकसित किया, जिसका इस्तेमाल 1972 में विभिन्न अनुप्रयोगों में किया गया। यहां तक कि अमेरिका द्वारा भू–संसाधन प्रौद्योगिकी उपग्रह (बाद में इसे 'लैंडसार्ट' के नाम से जाना गया) के नाम से विश्व के पहले नागरिक सुदूर संवेदी उपग्रह के प्रक्षेपण के पहले भारत से उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों को सुलभ करने का आग्रह किया गया। परिणामस्वरूप भारत लैंडसार्ट के प्रथम प्रयोगकर्त्ताओं में से एक बन गया, जब प्रथम उपग्रह 1972 के मध्य में प्रक्षेपित किया गया। उसके बाद उपग्रह से सीधे आंकड़े प्राप्त करने के लिए एक भू–स्टेशन की स्थापना की गयी। वर्तमान समय में, यह कहा जाता है कि कक्षा में आईआरएस श्रेणी के कुछ सर्वोत्तम नागरिक सुदूर संवेदी उपग्रह विद्यमान हैं। भारत ने इन उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी का विकास एवं परिष्करण किया है। आज कुछ विकसित देश भी अपने सूक्ष्म एवं छोटे उपग्रहों के प्रक्षेपण के लिए पीएसएलवी प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कर रहे हैं।

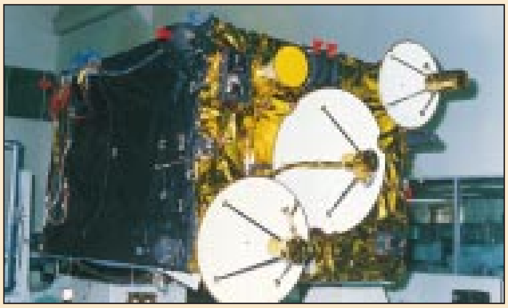

इनसैट 3सी

जिसकी शुरुआत एक चर्च में हुई

जब ई.वी. चिटनिस के नेतृत्व में एक विशेषज्ञ दल करीब 40 वर्ष पहले भारत का प्रथम परीक्षण रॉकेट सुविधा केन्द्र स्थापित करने के लिए त्रिवेन्द्रम (अब तिरुवनंतपुरम) शहर के बाहर मछुआरों के एक अव्यवस्थित गांव थुम्बा में पहुंचे, तब वहां एक पुराने चर्च और घास–फूस से बनी कुछ झोपड़ियों के अलावा कुछ नहीं था। हालांकि वैज्ञानिकों को 100 दिन से भी कम समय में ही केन्द्र के लिए भूमि को अधिग्रहित करने और उसे विकसित करने में कोई कठिनाई नहीं हुई, जिसके लिए त्रिवेन्द्रम के तत्कालीन कलेक्टर के. माधवन नायर और त्रिवेन्द्रम के बिशप राइट रेव. डॉ. पीटर बर्नार्ड परेरा को धन्यवाद। बिशप ने न केवल उस भूमि को दान दे दिया जिस पर सेंट मेरी मेग्डलीन चर्च खड़ा था, बल्कि उन्होंने मछुआरों को, जिनमें से अधिकांश ईसाई थे, एक बेहतर उद्देश्य के लिए अपने घरों को खाली करने के लिए राजी भी कर लिया।

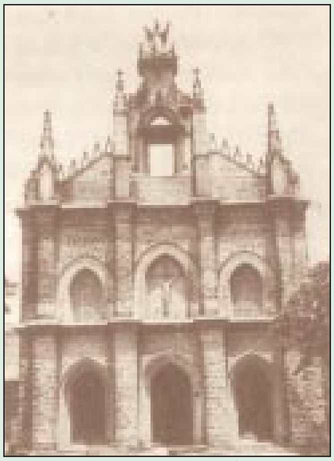

सेंट मेरी मेग्डलीन चर्च

इस प्रकार 600 एकड़ भूमि को अधिग्रहीत करके एक रॉकेट प्रक्षेपण सुविधा केन्द्र *'थुम्बा विषुवत् रेखीय रॉकेट प्रक्षेपण स्टेशन'* (टीईआरएलएस) के रूप में परिवर्तित कर दिया। थुम्बा परीक्षा रॉकेट के प्रक्षेपण के लिए एक आदर्श स्थल बन गया, क्योंकि यह पृथ्वी की चुम्बकीय विषुवत् रेखा के काफी समीप स्थित है।

जब नासा द्वारा उपहार में दिये गये एक परीक्षण रॉकेट 'नाइक–अपाचे' को प्रक्षेपित करने के लिए युवा वैज्ञानिक एवं इंजीनियर 1963 में थुम्बा पहुंचे, तब चर्च और पादरियों के रहने वाले आश्रम को उन्होंने अपनी पहली प्रयोगशाला एवं कार्यालय बनाया। उसके बाद चर्च को एक अंतरिक्ष संग्रहालय के रूप में संरक्षित कर दिया गया।

गोडार्ड अंतरिक्ष उड़ान केन्द्र और अमेरिका के वालोप्स आइलैण्ड फैसिलिटी से परीक्षण रॉकेट प्रक्षेपण में छह महीने का प्रशिक्षण लेकर लौटे दल के सदस्यों में से एक आर. अरवामुदन के अनुसार, भारतीय भूमि से पहली बार रॉकेट प्रक्षेपण को अपने हाथ में लेने के लिए थुम्बा आये वैज्ञानिकों को उनको उपलब्ध करायी गयी सुविधाओं को देखकर झटका लगा। अरावमुदन, जो बाद में श्रीहरिकोट्टा प्रक्षेपण केन्द्र (शार) और इसरो उपग्रह केन्द्र के निदेशक बने, ने 1983 में विक्रम साराभाई अंतरिक्ष केन्द्र (वीएसएससी) द्वारा प्रकाशित *'ट्वेन्टी इयर्स ऑफ रॉकेटरी इन थुम्बा : 1963–1983'* में अपने एक आलेख *'देन......एंड नाऊ'* में लिखा है : ''नासा से सीधे त्रिवेन्द्रम और थुम्बा आना एक झटके जैसा था। एक लांचर, एक चर्च और बूढ़े मछुआरों के कुछ घरों को मिलाकर थुम्बा में मिली हमें सुविधाएं वाशिंगटन डीसी और वालौप्स आइलैण्ड में हमें मिली सुविधाओं एवं उपकरणों की तुलना में वास्तव में काफी अंतर था। त्रिवेन्द्रम में भी एक सुविधाजनक आवास–स्थान प्राप्त करना कठिन था और भोजन तो एक समस्या थी...... हर सुबह, हम लोग रेलवे स्टेशन तक टहलते थे, कैंटीन में नाश्ता करते थे, पैक किये गये कुछ लंच लेते थे तथा एक बस पकड़ते थे...... थुम्बा में हम चर्च भवन में बैठते थे, जिसे हम लोग कबूतरों की पीढ़ियों के साथ हिस्सेदारी करते थे। वे सारी सुविधाएं जिसके बारे में साराभाई बात करते थे वे सभी अब भी बहुत हद तक सपना ही थीं।''

नवम्बर 1963 में सम्पन्न प्रथम प्रक्षेपण भी उत्सुक क्षणों से मुक्त नहीं था। चर्च भवन से कार्य कर रहे वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के पास रॉकेट को जोड़ने और उसे प्रक्षेपित करने के लिए आवश्यक न्यूनतम सुविधाएं नाम मात्र की थीं। प्रक्षेपण स्थल तक रॉकेट को लाने के लिए उपलब्ध उपकरण के नाम पर मात्र एक पुरानी जीप और एक हस्तचालित हाइड्रॉलिक क्रेन था। जब रॉकेट को लांचर पर रखा ही जाने वाला था तब क्रेन में एक छिद्र हो गया और वैज्ञानिकों को अपनी सामूहिक शारीरिक शक्ति का इस्तेमाल करके रॉकेट को अपने हाथों से ऊपर उठाना पड़ा। बाद में सैकड़ों परीक्षण रॉकेटों का सफलतापूर्वक प्रक्षेपण करने वाले इस थुम्बा विषुवत्रेखीय राकेट प्रक्षेपण केन्द्र को 2 फरवरी, 1968 को संयुक्त राष्ट्र संघ को समर्पित किया गया।

इस प्रकार 1969 में प्रसारण के क्षेत्र में भारत ने उपग्रह निर्देशात्मक टेलीविजन प्रयोग (साइट) के लिए नासा के साथ एक समझौते पर हस्ताक्षर किया। परिणामस्वरूप नासा ने अपने एटीएस–6 उपग्रह को वर्ष 1975–76 के लिए देश के विभिन्न राज्यों के असंख्य गांवों तक एक निर्देशात्मक माध्यम के रूप में प्रत्यक्ष टेलीविजन प्रसारण के प्रदर्शन के लिए किराये पर दिया। विश्व में कहीं भी प्रत्यक्ष प्रसारण के साथ साइट सबसे पहला बड़े पैमाने का प्रयोग बना।

इसरो ने फ्रांसीसी–जर्मन उपग्रह 'सिम्फनी फॉर सैटेलाइट टेलीक्म्युनिकेशन एक्सपेरिमेंट्स प्रोजेक्ट (स्टेप) का इस्तेमाल करने के लिए 1975 में एक समझौता किया। सिम्फनी के दो ट्रांसपोंडरों में से एक को एक को जून 1977 से उपग्रह द्वारा संचार, रेडियो नेटवर्किंग और टीवी प्रसारण के क्षेत्र में प्रयोग के लिए भारत को उपलब्ध कराया गया।

साठ के दशक के उत्तरार्द्ध में भारत ने सबसे पहले एक स्वदेशी भू–स्थैतिक उपग्रह प्रणाली की व्यावहारिकता का परीक्षण करना प्रारंभ किया। साराभाई ने मार्च 1970 में एक शोध–पत्र प्रस्तुत किया, जिसमें एक भारतीय राष्ट्रीय उपग्रह (इनसैट) प्रणाली के विवरण का विस्तृत उल्लेख किया गया था। इस शोध–पत्र में यह सलाह दी गयी थी कि भारत को उपग्रहों के प्रथम सेट को दूसरे देशों से खरीदना चाहिए तथा बाद की शृंखलाओं के लिए उपग्रहों का निर्माण भारत में ही करना चाहिए। उपग्रह संचार के लिए विषय क्षेत्र, समय और कार्यान्वयन रणनीति पर काम करने के लिए 1975 में गठित एक उच्चस्तरीय समिति ने 'एक में तीन' उपग्रह अवधारणा का प्रस्ताव रखा। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक इनसैट उपग्रह दूर–संचार, टेलीविजन और मौसम संबंधी आंकड़े उपलब्ध करायेगा। हालांकि इस प्रकार का डिजाइन जटिल था, इसके बावजूद इसे काफी लागत प्रभावी तथा भारत जैसे विकासशील देश के लिए उपयुक्त पाया गया।

चूंकि संचार, सूचना व प्रसारण तथा विज्ञान व प्रौद्योगिकी मंत्रालय इस प्रकार के उपग्रहों द्वारा उपलब्ध कराये गये आंकड़ों के प्रमुख प्रयोगकर्त्ता थे, इसलिए सरकार ने प्रारंभ से ही इनसैट कार्यक्रम में इनको शामिल करने का निर्णय लिया। 1978 में भारत ने संयुक्त राज्य अमेरिका के फोर्ड एयरोस्पेस कॉरपोरेशन (अब स्पेस सिस्टम्स/लॉरेल) को दो इनसैट–1 उपग्रहों को डिजाइन करने और उन्हें निर्मित करने का ठेका दिया। विदेशों में बने दो और उपग्रहों इनसैट–1सी और इनसैट–1डी को भारत द्वारा इनसैट–2 शृंखला के उपग्रहों को देश में ही निर्मित करने की शुरुआत के पहले ही कक्षा में स्थापित कर दिया गया। हालांकि मूलतः यह निर्णय लिया गया था कि प्रथम इनसैट–2 परीक्षण उपग्रह काय प्रक्षेपण 1989 में किया जायेगा, लेकिन इस मिशन में लगभग दो वर्ष और छह महीने का विलम्ब हो गया। बाद में, इसरो ने इनसैट–2 शृंखला के चार और उपग्रहों को प्रक्षेपित किया, जिसमें से अंतिम उपग्रह इनसैट–2ई था जिसका प्रक्षेपण अप्रैल 1999 में किया गया। तदुपरांत इसरो ने तीसरी पीढ़ी के दो इनसैट उपग्रहों–इनसैट–3बी और इनसैट–3सी को प्रक्षेपित किया है। पिछले वर्ष अप्रैल में पहली बार प्रदर्शित जीएसएलवी इनसैट श्रेणी के उपग्रहों को भू–स्थैतिक कक्षाओं में प्रक्षेपित करने में सक्षम है। निकट भविष्य में सम्भावित जीएसएलवी प्रौद्योगिकी का प्रचालन दूसरों के लिए अपने सभी उपग्रहों को स्वयं प्रक्षेपित करने को सम्भव बनायेगा और यहां तक कि दूसरे देशों को भी प्रक्षेपण सेवाएं मुहैया करायेगा।

संदर्भ

1. भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) द्वारा संकलित प्रो. एस. धवन के आलेख, शोध–पत्र ओर व्याख्यान, बैंगलोर; जुलाई 1997
2. गोपाल राज द्वारा लिखित *रीच फॉर दि स्टार्सः* वाइकिंग द्वारा प्रकाशित; 2000
3. *विंग्स ऑफ फायरः* एन ऑटोबायोग्रॉफी ऑफ ए.पी.जे. अब्दुल कलाम विथ अरूण तिवारी; यूनिवर्सिटीज प्रेस, हैदराबाद; 1999
4. मोहन सुंदर राजन द्वारा लिखित *'इंडिया इन ऑरबिट'*; प्रकाशन विभाग; मई 1997
5. डॉ.यू.आर.राव द्वारा लिखित *'विक्रम साराभाई, दि साइंटिस्ट'*; *'रेजोनेन्स'* पत्रिका में प्रकाशित; दिसम्बर 2001
6. रॉदम नरसिंहा द्वारा लिखित *'सतीश धवन'*; करेंट साइंस; 25 जनवरी, 2002
7. डॉ.यू.आर.राव द्वारा लिखित *'स्पेस टेक्नोलॉजी फॉर ससटेनेबल डेवलपमेंट'*; टाटा मैग्राहिल; 1996
8. *विक्रम अंबालाल साराभाई : भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के पुरोधा* :सुबोध महंती, ड्रीम 2047, जून 15, 1999

–हिन्दी रूपांतरणः अनिल कुमार द्विवेदी

• • •

भारतीय अंतरिक्ष–कार्यक्रम : उपलब्धियां और भविष्य

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) के अध्यक्ष डॉ. के. कस्तूरीरंगन ने ड्रीम 2047 के साथ एक ई–मेल साक्षात्कार में अंतिरक्ष में भारत की उपलब्धियों और इसरो की भविष्य की योजनाओं के बारे में विस्तार से बात की

ड्रीम 2047 : *परीक्षण रॉकेट से लेकर हाल के भू–स्थैतिक उपग्रह प्रक्षेपण यान (जीएसएलवी) तक, आर्यभट से लेकर बहुद्देशीय इनसैट श्रेणी के उपग्रहों तक, भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम ने 40 वर्ष का एक लम्बा सफर तय किया है। आपके अनुसार इन महत्वपूर्ण उपलब्धियों को सम्भव बनाने वाले प्रमुख कारण कौन–से हैं?*

डॉ. के. कस्तूरीरंगन : वास्तव में यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि है, विशेषकर भारत जैसे विकासशील देश के लिए, जिसने राष्ट्रीय विकासात्मक लक्ष्यों से अच्छी तरह से तालमेल बैठाते हुए अंतरिक्ष कार्यक्रम को सफलतापूर्वक लागू किया है। सबसे महत्वपूर्ण है आत्मनिर्भरता, जिसे कई वर्षों के बाद प्राप्त किया जा सका है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के जनक डॉ. विक्रम साराभाई द्वारा प्रदान की गयी संकल्पना सबसे महत्वपूर्ण कारक है जिसने इसरो को अपने कार्यक्रमों को सफल बनाने में सहायता की। प्रो. सतीश धवन और प्रो. यू.आर.राव जैसे सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक उनके उत्तराधिकारी बने। प्रो. धवन एक महान् वैज्ञानिक प्रशासक थे, जिन्होंने 70 के दशक में भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के प्रायोगिक चरण की देख–रेख की और उसकी मजबूत नींव रखी। उनके बाद प्रो. यू.आर.राव अंतरिक्ष सेवाएं उपलब्ध कराने के लिए अंतरिक्ष कार्यक्रम को प्रचालनात्मक चरण में लेकर गये। पिछले आठ वर्षों में, अंतरिक्ष कार्यक्रम में परिपक्वता लाने तथा आईआरएस एवं इनसैट जैसे हमारे उपग्रहों की जरूरतों के साथ भारतीय प्रक्षेपण यानों की प्रक्षेपण क्षमता को सुमेलित करने में प्रयासों को समेकित करने की कोशिश की गयी है। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के विभिन्न चरणों में प्रदत्त उचित प्रकार के नेतृत्व को इसरो के कर्मचारी वृंद के समर्पित प्रयासों द्वारा सुमेलित किया गया है। इनमें से अधिकांश भारतीय विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों से आये हैं तथा भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की सफलता में सहायता प्रदान की है। सबसे महत्वपूर्ण यह कि राजनीतिक पार्टी प्रतिबद्धता से ऊपर उठकर राजनीतिज्ञों द्वारा दिये गये राजनीतिक समर्थन ने हमारी सफलता में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभायी है।

ड्रीम 2047 : *जीएसएलवी को साराभाई की संकल्पना का प्रमुख तत्व माना जाता है। उसकी प्रथम विकासात्मक उड़ान पिछले वर्ष अप्रैल में सम्पन्न हुई। आगामी कुछ वर्षों में इसरो अपनी जीएसएलवी प्रक्षेपण क्षमताओं को परिष्कृत और मजबूत करेगा। लेकिन इसके बाद क्या होगा? इसरो भविष्य में कौन–सी प्रमुख प्रौद्योगिकीय चुनौती को स्वीकार करने की योजना बना रहा है?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : अप्रैल 2001 में जीएसएलवी की सफलतापूर्वक उड़ान एक प्रकार से डॉ. विक्रम साराभाई की संकल्पना की पूर्ति है। डॉ. साराभाई यह चाहते थे कि भारत सुदूर संवेदी उपग्रहों आदि जैसी राष्ट्रीय विकासात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देश में ही उपग्रह और प्रक्षेपण यानों का डिजाइन तैयार करे और उसे विकसित करे। आज हम अपने सुदूर संवेदी उपग्रहों (आईआरएस) और इनसैट उपग्रहों के निर्माण में सक्षम हैं और जो राष्ट्रीय जरूरतों को पूरा भी कर रहा है। हमारा पीएसएलवी देश में ही आईआरएस उपग्रहों को प्रक्षेपित करने में सक्षम है। एक बार शुरू हो जाने के बाद जीएसएलवी अपने प्रक्षेपण यानों से इनसैट श्रेणी के संचार उपग्रहों को प्रक्षेपित करने में सक्षम हो जायेगा। यह स्वदेशी अंतरिक्ष कार्यक्रम एक तरह से डॉ. साराभाई के सपने का पूरा हो जाना है, जो सुनिश्चित रूप से राष्ट्रीय विकास का एक अंग है।

निश्चित रूप से अब तक जो कुछ भी उपलब्धि हमने हासिल की है उससे हम संतुष्ट नहीं हो सकते। प्रौद्योगिकियां निरंतर तेजी से परिवर्तित होती हैं। जिन प्रणालियों का हमने विकास किया है उनको निरंतर परिष्कृत करना है। हम पहले से ही आईआरएस और इनसैट श्रेणी के उपग्रहों से संबंधित कार्यों में जुटे हुए हैं। प्रस्तावित *कार्टोसैट* और *रिसोर्ससैट* के पास वर्तमान आईआरएस उपग्रहों की तुलना में काफी बेहतर स्थानिक एवं वर्णक्रमीय रिजॉल्यूशन होगा। हम वर्तमान उपग्रहों की सीमाओं को दूर करने के लिए सूक्ष्म तरंग सुदूर संवेदी उपग्रहों पर भी काम कर रहे हैं। वर्तमान उपग्रह दृश्य वर्णक्रमीय बैंडों में संचालित हैं और इसीलिए इनका मेघाच्छन्न वातावरण में प्रतिबिम्बन (इमेजिंग) के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, हम इनसैट–4 श्रेणी के उपग्रहों की भी योजना बना रहे हैं, जिसमें आगामी पांच से छह वर्षों के दौरान प्रयोगकर्ताओं की ट्रांसपोंडरों की अनुमानित आवश्यकता को भी ध्यान में रखा जायेगा।

डॉ. के. कस्तूरीरंगन

हम उन्नत वैज्ञानिक मिशन पर भी आगे बढ़ रहे हैं, जिसमें से एक है – खगोल विज्ञान के लिए एक विशेष उपग्रह 'एस्ट्रोसैट' का प्रक्षेपण। हम चंद्रमा पर एक सम्भावित वैज्ञानिक मानव रहित मिशन भेजने के लिए भी अध्ययन कर रहे हैं।

भारी आईआरएस उपग्रहों को अंतरिक्ष में ले जाने के लिए हमारे पीएसएलवी के सामर्थ्य में भी निरंतर सुधार हो रहा है। हमने पहले से ही जीएसएलवी के सुधरे रूपांतर पर काम प्रारंभ कर दिया है ताकि लगभग छह वर्षों में जीटीओ में चार टन तक के पेलोड को ले जाने की क्षमता में सुधार किया जा सके। ये सभी हमारे समक्ष पर्याप्त प्रौद्योगिकीय चुनौतियां पेश करते हैं।

ड्रीम 2047 : *ऐसा कहा गया है कि इसरो एक मानवरहित चंद्र अभियान की योजना बना रहा है। इस प्रकार के अभियान की क्या सार्थकता है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि साठ के दशक के उत्तरार्द्ध में चंद्रमा पर मानव उतर चुका है? यह हमारे अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी कार्यक्रम को किस प्रकार सबल बनायेगा।*

डॉ. कस्तूरीरंगन : इसरो द्वारा गठित चंद्र अभियान कार्यबल चंद्रमा की कक्षा में एक मानवरहित अंतरिक्ष यान भेजने के लिए विभिन्न संभावनाओं पर विचार–विमर्श कर रहा है।

चंद्र अभियान भारत में विज्ञान को बल प्रदान कर सकता है, प्रौद्योगिकीय चुनौती पेश कर सकता है, और सभवतः अंतर्राष्ट्रीय सहयोग में नये आयाम जोड़ सकता है। नयी शताब्दी में बाह्य जगत के अन्वेषण के लिए भारत के भविष्य के अभियानों के लिए यह एक परीक्षण आधार के रूप में सेवा प्रदान कर सकता है। यह वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षमताओं का अधिकतम इस्तेमाल कर सकता है, जिसको भारत ने प्रक्षेपण यानों, उपग्रहों तथा वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकीय एवं अनुप्रयोग नीतभारों के रूप में अर्जित किया है। इस प्रकार चंद्र अन्वेषण के लिए प्राप्त ज्ञान को समाकलित करना संभव होगा।

भारतीय चंद्र अभियान अब तक संचालित अभियानों को भी ध्यान में रखेगा। जिनकी प्रकृति मुख्यतः अन्वेषणात्मक थी, कुछ संभावित वैज्ञानिक लक्ष्य इस प्रकार होंगे – चंद्रमा के समीप विद्यमान कण एवं विकिरण पर्यावरण का विस्तृत अनुसंधान, गामा–रे स्पेक्ट्रोमिट्री के द्वारा दुर्लभ तत्वों के वितरण को समझना, चट्टानों के उप–समूहों और धरातलीय संरचना के विस्तृत पहलुओं का अध्ययन, चंद्रमा की सतह पर धूमकेतु की धूल का अध्ययन एवं विश्लेषण, तथा हाई रिजॉल्यूशन स्टीरियोस्कोपिक फोटोग्राफी के साथ विस्तृत मानचित्रीकरण।

ड्रीम 2047 : *ऐसा कहा जाता है कि भारत अंतरिक्ष शक्ति सम्पन्न एकमात्र ऐसा देश है जिसने बहुद्देशीय उपग्रहों को प्रक्षेपित किया है। ऐसा क्यों है? एक ही उपग्रह में विभिन्न नीतिभार को समाहित करने के क्या लाभ हैं?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : जैसा कि मैंने पहले कहा है, भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताओं से सामंजस्य स्थापित किये हुए है। हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम को उन देशों से व्युत्पन्न नहीं किया जा सकता, जिनकी आवश्यकताएं हमसे पूर्णतः भिन्न हों। जब हमने इनसैट–1 श्रेणी के उपग्रहों को अपनाया, तब भारत जैसे एक विशाल देश की सामाजिक–आर्थिक और अन्य आवश्यकताओं ने एक अद्वितीय बहुद्देशीय उपग्रह को डिजाइन करने को

प्रेरित किया, जो एक ही प्लेटफार्म पर दूरसंचार , टेलीविजन प्रसारण और मौसम विज्ञान संबंधी जरूरतों को समेकित करे। इसने हमारे लिए काफी अच्छा काम किया और जब हमने अपने प्रथम दो उपग्रहों इनसैट–2ए और इनसैट–2बी और बाद में इनसैट–2ई का विकास किया, तब हमने बहुद्देशीय उपग्रहों के बारे में ही सोचा। इनसैट–3ए भी एक बहुउद्देशीय उपग्रह ही है। हालांकि इन उपग्रहों की बढ़ती संचार क्षमताओं के साथ अब हम संचार एवं मौसम विज्ञान के लिए विशेष उपग्रहों की योजना बना रहे हैं। इस दिशा में इम 'मेटसैट' के नाम से सिर्फ मौसम विज्ञान के लिए पहले विशेष उपग्रह को प्रक्षेपित करने जा रहे हैं। यह हमें अपने ही प्रक्षेपण यान पीएसएलवी से मेटसेट को प्रक्षेपित करने में सहायता प्रदान करेगा। इसलिए हम वास्तविक जरूरत, आर्थिक स्थिति और उन्हें कार्यान्वित करने संबंधी समय कारक पर निर्भर अपनी अंतरिक्ष प्रणालियों में सुधार और सामंजस्य स्थापित कर रहे हैं।

ड्रीम 2047 : *क्या बहुद्देशीय उपग्रह एक उपग्रह डिजाइनर के समक्ष एक ही नीतिभार (पेलोड) वहन करने वाले उपग्रह की तुलना में ज्यादा चुनौतियां पेश करता है?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : बहुद्देशीय उपग्रह का डिजाइन तैयार करना एवं उसका निर्माण करना निश्चित रूप से काफी जटिल है। उदाहरणार्थ, जब हमारे पास एक तापीय अवरक्त संसूचक के साथ अति उच्च रिजॉल्यूशन रेडियोमीटर जैसा मौसम विज्ञान संबंधी पेलोड हो तो उसके लिए विशेष तापीय प्रबंधन की आवश्यकता होती है। संदर्भ संसूचक को एक स्थिर ताप पर बनाये रखना पड़ता है। उत्तर की ओर देखने के लिए संदर्भ संसूचक को निर्मित कर इसे प्राप्त किया गया है और हमने यह भी प्रयास किया है कि सूर्य की किरणें संसूचक के तापमान को अव्यवस्थित न कर सकें। इसलिए हन उपग्रहों में उत्तर दिशा में सौर पैनल नहीं लगा होता है, जिससे संसूचक पर सूर्यकी किरणें परावर्तित नहीं हो पाती है। फलतः यह आवश्यक हो गया है कि सौर पैनल सिर्फ दक्षिण दिशा में ही हों। कक्षा में इसके वजन का संतुलन उत्तर दिशा में स्थापित स्तंभ व पाल (Boom and sail) द्वारा किया जाता है। यह एक जटिल प्रणाली है, लेकिन हमने इसमें महारथ हासिल कर ली है और इसका उपयोग हमारे बहुद्देशीय इनसैट उपग्रहों में किया गया है।

ड्रीम 2047 : *इस बात को स्वीकार करते हुए कि जीएसएलवी प्रौद्योगिकी की व्यावसायिकता में अभी कुछ वर्षों की देरी है, इसरो कितने समय में प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी में पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर हो जाएगा?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : जहां तक भारतीय सुदूर संवेदी उपग्रहों के प्रक्षेपण की बात है हम इसमें पूर्णतः आत्मनिर्भर हैं। जब दो उड़ानों के उपरांत जीएसएलवी अधिकृत हो जाएगा, तब इनसैट श्रेणी के उपग्रहों के प्रक्षेपण में हमें आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। हमने 2000 किलोग्राम के एक अंतरिक्ष यान बस की नयी शृंखला को विकसित करने की योजना बनायी है, जिसे वर्तमान में उपलब्ध जीएसएलवी द्वारा उसमें थोड़ा–सा सुधार करके प्रक्षेपित किया जाएगा।

ड्रीम 2047 : *भारतीय उद्योग हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम में एक उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं। क्या आप निकट भविष्य में भारतीय उद्योगों की और अधिक भूमिका देखते हैं? यदि हां, तो इसे वास्तविकता में बदलने के लिए इसरो क्या कदम उठा रहा है?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : अंतरिक्ष कार्यक्रम के आरंभ से ही इसरो ने भारतीय उद्योगों को इससे जोड़ना शुरू किया था। अंतरिक्ष उपकरणों के निर्माण के जटिल कार्य के लिए भारत में कोई औद्योगिक अधिसंरचना नहीं थी। पिछले चार दशकों में हमने एक उत्कृष्ट औद्योगिक आधार का विकास किया है, जो इसरो के कार्यों को कर सकें। वास्तव में, अंतरिक्ष उपकरणों की आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु कुछ उद्योगों को अलग से भी स्थापित किया गया है। भविष्य में उद्योगों की और बड़ी भूमिका की हम आशा करते हैं। हम चाहते हैं कि इसरो प्रमुख रूप से अनुसंधान व विकास संगठन ही रहे और उपग्रहों तथा प्रक्षेपण यानों के नियमित विकास का कार्य उद्योगों द्वारा ही किया जाये। हम इस दिशा में कार्य कर रहे हैं और सीआईआई जैसे मंचों के माध्यम से औद्योगिक व्यवसायियों के साथ कई बार इस संदर्भ में विचार–विमर्श किया है।

ड्रीम 2047 : *दूसरे देशों को अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में यथा–उपग्रह प्रक्षेपण, उपग्रहों के निर्माण आदि से संबंधित अपनी सेवाएं प्रदान करने के भारत के प्रस्ताव की क्या संभावनाएं हैं?*

डॉ. कस्तूरीरंगन : हमने पहले से ही अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष बाजार में एक मुकाम हासिल कर लिया है। अंतरिक्ष विभाग के तहत आने वाले अंतरिक्ष कॉरपोरेशन के साथ हुए व्यावसायिक समझौतों के अंतर्गत अब लगभग एक दर्जन देश हमारे सुदूर संवेदी उपग्रहों से प्राप्त आंकड़े हासिल कर रहे हैं। हमने अब तक पीएसएलवी द्वारा दूसरे देशों के चार छोटे उपग्रहों को प्रक्षेपित किया है, जिनमें से दो जर्मनी के तथा एक–एक कोरिया और बेल्जियम के थे। बहुत–से अंतरिक्ष अभिकरण हमारे ट्रैकिंग एंड टेलीमिट्री सपोर्ट का इस्तेमाल करते हैं। हमने दूसरे देशों को अंतरिक्ष यान संबंधी कई हार्डवेयरों की आपूर्ति भी की है तथा व्यावसायिक समझौते के तहत दूसरे देशों के कर्मचारियों को प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान करने का प्रस्ताव दिया है।

टी.वी. जयन

• • •

संपादक के नाम पत्र

मैं ''ड्रीम 2047'' के प्रत्येक अंक का नियमित रूप से अध्ययन करती हूं। हम हिन्दी भाषियों के लिए यह पत्रिका एक वरदान है। विज्ञान की बहुत सारी जानकारी आसानी से इस पत्रिका द्वारा प्राप्त होती है। अगर इस पत्रिका के माध्यम से विभिन्न विश्वविद्यालयों, कॉलेजों में विज्ञान संबंधित उच्च अध्ययन के बारे में जानकारी तथा उच्चतम पाठ्यक्रम में प्रवेश के बारे में जानकारी दी जाये तो इस पत्रिका में चार चांद लग जायें और साथ ही हम ग्रामवासी छात्र/छात्राओं का भविष्य भी उज्ज्वल हो जाये।

कुमारी गायत्री
ग्राम, पोस्ट–परसौना, जिला–सारन, बिहार

मैं ''ड्रीम 2047'' का नियमित पाठक हूं। मुझे इसके हर अंक का बेसब्री से इंतजार रहता है। मैं चाहता हूं कि इसमें एक प्रश्नमंच प्रारंभ किया जाए, जिसमें पाठकों के प्रश्नों का उत्तर दिया जाए। इसका हर लेख अपने आप में सम्पूर्ण होता है। अन्तर्देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय संस्था, जिनके बारे में इस पत्रिका में उल्लेख होता है उसके पत्राचार का पता भी देने का कष्ट करें ताकि लोग उस संस्था से जुड़ सकें या उसके बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकें।

प्रभात कुमार रंजन
पुत्र श्री अवध बिहारी प्रसाद, ग्राम–महमदपुर,
पोस्ट–आगानूर, वाया–दाउदनगर, जिला–औरंगाबाद (बिहार) 824113

ड्रीम 2047 नवम्बर 2001 अंक देखा। बहुत पसन्द आया। विशेषकर 'आइए उस बूंद को बचाएं' तथा 'सिफलसेल एनिमिया एक आणविक रोग' लेख बहुत अच्छे लगे।

वेद प्रकाश अग्रवाल
मुख्य पथ–बतौली, सरभुजा (छतीस गढ़) 497101

आपकी पत्रिका के कुछ अंक देखने को मिले। हिन्दी भाषा में विज्ञान प्रसार के क्षेत्र में आपकी यह पत्रिका आज की एक बड़ी कमी को दूर करने का बहुत प्रशंसनीय प्रयास है। पत्रिका अच्छी लगी। प्रकाशित लेखों का स्तर सुबोध है, और भाषा भी सरल है। फिर भी लगता है कभी कभी (समय की कमी के कारण?) अंग्रेजी से कम्प्यूटर का किया हुआ अनुवाद सीधे पत्रिका में जगह पा जाता है। दिसम्बर 2002 के अंक में पुस्तकों की समीक्षा स्तम्भ में शायद ऐसा ही हुआ है। हिन्दी की वाक्य रचना अंग्रेजी से काफी भिन्न है। श्रीनिवास रामानुजन पर लिखे लेख में भी शुरु में दिये हुए हार्डी के वक्तव्य का अर्थ समझने के लिए पलटकर मूल अंग्रेजी रूप देखना पड़ा। शायद हार्डी कहना चाहते थे कि उन्होंने रामानुजन और लिटिलवुड के साथ मिलकर ''लगभग बराबर के स्तर पर'' काम किया। यह भाव अनुवाद में नहीं मिल पाया।

दीपक धर
प्राध्यापक, सैद्धान्तिक भौतिकी विभाग,
टाटा मूलभूत अनुसंधान केन्द्र, होमी भाभा मार्ग, मुंबई 400005

विज्ञान प्रसार की मासिक पत्रिका ''ड्रीम 2047'' अंक फरवरी 2002 पढ़ी। विज्ञान जैसे शुद्ध तकनीकी पर सरल एवं सुबोध हिन्दी का प्रयोग निःसंदेह सराहनीय है। चन्द्रशेखर वेंकट रामन – आधुनिक भारतीय विज्ञान के गाथा पुरुष को समर्पित इस अंक में बहुत ही उपयोगी जानकारी दी गई है। प्रयास सराहनीय है।

रंजन कुमार
उप प्रबंधक (राजभाषा)

हाल ही में आयोजित 'विश्व पुस्तक मेले' (पन्द्रहवें) में मैंने आपकी पत्रिका का पहली बार अवलोकन किया और लगभग मंत्र–मुग्ध हो गया। जितनी अच्छी जानकारी इसमें थी, उतनी ही बेहतरीन प्रस्तुति भी। पत्रिका का अंक हालांकि थोड़ा पुराना (नवंबर, 2001) था, पर सामग्री सदाबहार थी।

सुनील कुमार
सी–6/90, यमुना विहार, दिल्ली – 110053

रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड

आधुनिक रॉकेटविद्या का अग्रदूत

❑ सुबोध महंती

मैं महसूस करता हूं कि हम एक ऐसे युग में प्रवेश करने जा रहे हैं, जिसके विकास की तुलना उस युग के बराबर है जिसमें विमान का विकास हुआ था। यह एक कल्पना का विषय है कि हम रॉकेटों और जेट प्लेनों की गति से कितनी दूर जा सकते हैं..... मैं सोचता हूं कि यह कहना उचित होगा कि आपने अभी तक कुछ भी नहीं देखा है।

रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड

रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड से बेहतर और कोई नहीं जानता कि सफर कितना दूर था या यह यात्रा किसी को कितनी जल्दी जय करनी चाहिए थी। अज्ञात विश्व के लिए मानवीय खोज की दिशा में उनके द्वारा उठाया गया कदम पहला था। उनकी स्मृति प्रत्येक रॉकेट के साथ ऊंची उठती जाती थी; उनकी प्रेरणा तारों को छूती थी।

सुज़ाने एम. क्वायल इन 'रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड : पायनियर ऑफ रॉकेटरी एंड स्पेस फ्लाइट (1992)

पृथ्वी मानव जाति का पालना है – कोई हमेशा के लिए पालने में नहीं रह सकता।

कॉन्स्टेंटिन एडुआर्डोविच सिओल्कोवस्की

जैसा कि एक अमेरिकी विमान चालक चार्ल्स ऑगस्ट्स लिन्डबर्ग (1902–74) ने कहा था, ''हम ऐसे संसार में रहते हैं, जहां सपने और हकीकत आपस में बदलते रहते हैं।'' कल का सपना आज की उम्मीद में बदलता जाता है और यही उम्मीद आने वाले कल की हकीकत होगी। यदि अतीत में यह संभव हुआ था और भविष्य में भी ऐसा ही होगा, तो ऐसा राबर्ट हचिंग्स गोडार्ड जैसे काल्पनिक और स्वप्नदृष्टा के कारण ही होगा। 1920 में गोडार्ड की इस असंभव अवधारणा के लिए कि 'राकेट अंतरिक्ष के शून्य में विचरण कर सकता है' 'द न्यूयार्क टाइम्स' द्वारा उनकी खिल्ली उड़ायी गयी थी। 16 मार्च, 1926 को गोडार्ड ने दुनिया का पहला तरल ईंधन रॉकेट प्रक्षेपित किया। पहले चंद्र अभियान के लिए अपोलो अंतरिक्ष यात्रियों के रवाना होने के बाद *द न्यूयार्क टाइम्स* ने स्वर्गीय गोडार्ड के प्रति सार्वजनिक रूप से क्षमा मांगी।

गोडार्ड एक महान् भौतिकविद् थे। आविष्कार के लिए उनमें अद्वितीय प्रतिभा थी। गोडार्ड ऐसे पहले वैज्ञानिक थे, जिन्होंने प्रक्षेपास्त्रों और अंतरिक्ष उड़ान की संभावनाओं को महसूस करने के साथ–साथ उन्हें व्यावहारिक धरातल पर लाने में प्रत्यक्ष योगदान भी दिया। गोडार्ड ने रूस के कॉन्सटेंटिन एडुआर्डोविच सियोल्कोवस्की तथा जर्मनी के हरमन ओबर्थ के साथ अंतरिक्ष के अन्वेषण की पूर्व कल्पना की। गोडार्ड ने विश्व के पहले तरल ईंधन रॉकेट अत्यधिक ऊंचाई पर उड़ने वाले प्रारंभिक रॉकेट तथा प्रथम व्यावहारिक स्वचालित स्टेयरिंग उपकरण का डिज़ाइन और निर्माण किया।

रॉबर्ट हचिंग्स गोडार्ड (1882–1945)

रॉकेट क्रिया के सामान्य सिद्धांत का विकास करने वालों में से गोडार्ड पहले व्यक्ति थे। गोडार्ड ने आज की लम्बी दूरी वाले रॉकेटों, प्रक्षेपास्त्रों, भू–उपग्रहों और अंतरिक्ष उड़ान के लिए तकनीकी बुनियाद रखी। रॉकेट क्रिया के सामान्य सिद्धांत को सबसे पहले विकसित करने और निर्वात में रॉकेट नोदन की कार्यक्षमता को प्रायोगिक रूप से सिद्ध करने वालों में से वे भी एक थे।

बहु–स्तरीय रॉकेटों के विचार पर 1914 में अमेरिकी पेटेंट प्राप्त करने वाले गोडार्ड पहले व्यक्ति थे। उन्होंने उसी वर्ष रॉकेट में इस्तेमाल किए जाने वाले तरल ईंधन के लिए भी पेटेंट प्राप्त किया। अपने जीवन काल के दौरान उन्होंने रॉकेटों और अंतरिक्ष यात्रा संबंधी अपने विचारों पर 88 पेटेंट प्राप्त किए। यहां तक कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी शोध टिप्पणियों और डायरियों में दर्ज रॉकेट संबंधी विचारों के लिए 131 पेटेंट प्रदान किए गये। गोडार्ड के जीवन काल के दौरान अमेरिकी सरकार ने उनके कार्यों में कम ही रुचि दिखायी थी। निधन के बाद ही गोडार्ड को उनके उन अग्रगामी कार्यों के लिए उचित सम्मान दिया गया जिनसे नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (नासा) और अमेरिकी अंतरिक्ष अन्वेषण कार्यक्रम प्रत्यक्ष रूप से प्रेरित हुए थे।

यह गोडार्ड ही थे, जिन्होंने सर्वप्रथम 16 मार्च, 1926 को एक तरल ईंधन रॉकेट को विकसित और प्रक्षेपित किया। 1929 में, गोडार्ड ने एक रॉकेट उड़ान में एक कैमरे और बैरोमीटर से निर्मित एक वैज्ञानिक पेलोड को पहली बार प्रक्षेपित किया। रॉकेटरी और अंतरिक्ष उड़ान से संबंधित अनेक वस्तुओं की पहले पहल खोज गोडार्ड द्वारा की गई थी, जैसे – रॉकेट ईंधन के लिए उपयुक्त पम्प, स्व–शीतलक रॉकेट मोटर, परिवर्तनीय उत्प्रेरक रॉकेट मोटर तथा प्रायोगिक रॉकेट प्रक्षेपण उपकरण। अंतरिक्ष उड़ान हेतु रॉकेट के विकास के लिए गोडार्ड का सैलर्जी, एयरोडायनेमिक्स, थर्मोडायनमिक्स, संरचनात्मक अभियांत्रिकी, यांत्रिक अभियांत्रिकी तथा हाइड्रोलिक अभियांत्रिकी में विशेषज्ञता प्राप्त हो गयी थी। उन्होंने अधिकतर अकेले ही अपने विचारों का अनुवाद करके उसे यथार्थ में बदल दिया, जो सिर्फ रचनात्मक कल्पना प्रतीत होते थे। प्रायोगिक असफलताएं उनके लिए 'मूल्यवान नकारात्मक सूचना' थी। वे परिणाम चाहते थे, न कि मान्यता।

गोडार्ड का जन्म 5 अक्टूबर, 1882 को मैसाचुसेट्स स्थित वारसेस्टर में हुआ था। 1883 में गोडार्ड के माता–पिता नाहुम डैनफोर्ड गोडार्ड और फैनी होयट गोडार्ड बोस्टन चले गये, जहां उन्हें एक मशीन निर्मित चाकू की दुकान में साझेदारी का प्रस्ताव मिला। बार–बार की बीमारी (श्वसनी शोथ के दौरों एवं फ्लूरिसी – फेफड़ों में सूजन) के कारण गोडार्ड नियमित रूप से स्कूल नहीं जा सके। इसके बावजूद गोडार्ड स्कूल में बहुत अच्छे थे। चूंकि उनका कमजोर स्वास्थ्य उन्हें खेल–कूद में भाग लेने की अनुमति नहीं देता था, इसलिए गोडार्ड ने अपना ध्यान पुस्तकों की ओर मोड़ लिया। अपने स्कूल के दिनों से ही उन्होंने अंतरिक्ष यात्रा के लिए लगन विकसित की। यह उनकी अध्ययनशीलता से भी प्रतिबिंबित होता है। जिन पुस्तकों से वे प्रभावित हुए, उनमे से कुछ इस प्रकार थीं : एलन पो की *लूनर डिसकवरीज;* जोसफ आटर्ले की *ए वोएज टु द मून;* पर्सी ग्रेग की *एक्रास द जोडियाक;* एडवर्ड एवरेट हेल की *द ब्रिक मून;* जूल्स वर्न की *फ्राम द अर्थ टु द मून;* एच.जी. वेल्स की *वार ऑफ द वर्ल्ड* और गैरेट पी. सरविस्स की एडीसन्स *कांक्वेस्ट ऑफ मार्स।*

सर जॉन हर्शेल की दूरबीन द्वारा देखी गयी चंद्र कलाओं से संबंधित बहुचर्चित ''मून होक्स'', जिसके बारे में आलेखों की एक श्रृंखला समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई थी, को भी गोडार्ड ने पढ़ाथा। यह प्रसंग परास्थलीय जीवन के असितत्व पर विश्वास में लोगों की सुभेद्यता को प्रदर्शित करता है।

अपने शुरुआती अध्ययनों से गोडार्ड ने निष्कर्ष निकाला कि अंतरिक्ष यात्रा वास्तविकता बन सकती है यदि..... एक अंतरिक्ष यान का नोदन कोई काफी दूर तक कर सके और इसकी गति इतनी तीव्र हो कि वह पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल

की उपेक्षा कर सके। उन्होंने पूरी गंभीरता से अंतरिक्ष में वस्तु के प्रक्षेपण की दिशा में प्रयोग आरंभ किया था। गोडार्ड ने अपने घर की परछत्ती में एक प्रयोगशाला बनायी और अंतरिक्ष में प्रक्षेपण के लक्ष्य की दिशा में प्रयोग करना आरंभ किया। उनके प्रयोगों ने उनके सामने हमेशा प्रतिरोधी अनचाही समस्याएं उत्पन्न कीं। उदाहरण के लिए एक बार जब वे अपने तर्क सिद्ध सिद्धांत की जांच कर रहे थे कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के मिश्रण से ऐसी शक्ति उत्पन्न हो सकती है जो किसी वस्तु को हवा में उठाने के लिए सक्षम हो सके, तो उन्होंने अंत में देखा कि उनकी खिड़कियों के शीशे खड़ाखड़ाकर टूट गये। इस प्रकार उन्होंने यह सीखा कि यद्यपि उनके तर्क सही थे लेकिन हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का मिश्रण खतरनाक हो सकता है यदि उचित तरीके से इनका रख–रखाव नहीं किया जाय।

ई. एलन पो (1809–49)

उन्होंने एल्युमिनियम का गुब्बारा बनाकर मांटगोल्फियर बंधुओं द्वारा 1783 में गर्म हवा वाले गुब्बारे से की गयी उड़ान को दुहराने का प्रयास किया। उन्हें अपने प्रारंभिक प्रयोग में सफलता नहीं मिली। लेकिन उनकी शुरुआती असफलताएं या उनके हितैषियों द्वारा ऊट–पटांग प्रयोगों पर समय नष्ट करने के खिलाफ दी गयी सलाह उन्हें अपने लक्ष्य का पीछा करने से रोक नहीं पायी। अपने बाद के वर्षों में गोडार्ड ने कहा कि 19 अक्टूबर, 1899 को उन्होंने चेरी वृक्ष की ऊंची शाखा पर बैठकर अंतरिक्ष के अन्वेषण के प्रति अपने को समर्पित करने का दृढ़तापूर्वक निर्णय लिया था। गोडार्ड का कहना है : ''यह विशुद्ध सौंदर्य से भरी पूर्णतः रंगीन दोपहरियों में से एक थी, जैसी कि अक्टूबर में न्यू इंग्लैंड में होती है। जब मैंने पूर्व की ओर देखा तब मैंने यह कल्पना की कि मंगल ग्रह तक जाने को संभव बना सकने वाले यंत्र का निर्माण करना कितना अद्भुत होगा और इसका आकार छोटा करने पर यह कैसा दिखेगा जब यह मेरे पैर के नीचे के धरातल से ऊपर की ओर उड़ेगा। यदि कोई वस्तु एक समतल पट्टी पर तेजी से घूर्णन करती है और उसका ऊपर का हिस्सा नीचे के हिस्से की अपेक्षा तेजी से घूर्णन करता है तो उसे ऊपर उठने के लिए उसके शीर्ष के केन्द्रीभूत बल के कारण उसे ऊपर उठने के लिए लिफ्ट मिलेगी। जब मैं उस वृक्ष से उतरा, तब मेरी सोच बदल चुकी थी और मुझे अपना अस्तित्व अधिक सोद्देश्यपूर्ण लगा।'' और तब से अंतरिक्ष उड़ान के सपने ने गोडार्ड को तब तक नहीं छोड़ा, जब तक उन्होंने इसे वास्तविकता में नहीं बदल दिया।

हरबर्ट जॉर्ज वेल्स (1866–1946)

1901 में गोडार्ड ने वार्सेस्टर में स्थित साउथ हाईस्कूल में प्रवेश लिया, जहां उन्होंने सुसज्जित विज्ञान प्रयोगशाला और उत्साहजनक प्राध्यापक पाकर स्वयं को उल्लसित महसूस किया। रॉकेट बनाने और अंतरिक्ष में यात्रा करने के अपने सपने पर काम करने के साथ–साथ गोडार्ड कई अन्य गतिविधियों में भी व्यस्त थे। इस दौरान उन्होंने फ्रेंच का अध्ययन किया, स्कूल के समाचार पत्र का सम्पादन किया, स्कूल के नाटकों में अभिनय किया, स्कूल के कार्यक्रमों में समूह गान किया, कक्षा के पियानोवादक बने और जहां कहीं भी उन्हें अवसर मिला, उन्होंने संगीत कार्यक्रम में भाग लिया। गोडार्ड के लिए विज्ञान की प्रत्येक शाखा महत्वपूर्ण थी एवं प्रकृति की प्रत्येक असाधारण घटना उनके लिए रुचिकर थी। उन्होंने अपनी रोजाना की गतिविधियों का विवरण लिखने की आदत का विकास किया कि उन्होंने आज क्या सोचा और क्या योजना बनायी। 1901 के शुरू में ही उन्होंने ''द नेवीगेशन ऑफ स्पेस'' शीर्षक से एक आलेख लिखा, जिसे उन्होंने एक विज्ञान पत्रिका को भेजा, पर उसे स्वीकार नहीं किया गया। उन्होंने अनेक आलेख लिखे, पर उनमें से कभी कोई प्रकाशित नहीं हुआ। गोडार्ड के लिए ऐसा

अर्नेस्ट रदरफोर्ड

कोई नहीं था, जो अंतरिक्ष उड़ान के उनके सपने को गंभीरता से ले सकता और उनके विचारों के साथ उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर सकता। उनके अध्यापकों का यह मानना था कि रॉकेटिंग की सम्पूर्ण धारणा बेतुकी और अव्यावहारिक है और रॉकेट अन्वेषकों के लिए इसमें कोई भविष्य नहीं है। इससे गोडार्ड हतोत्साहित नहीं थे। उन्होंने बाद में लिखा, ''यह सपना कभी खत्म नहीं होगा, जबकि तार्किक रूप से मैं स्वयं ही मानता हूं कि यह असंभव है, पर मेरे अंदर कुछ ऐसा है जो मुझे इस दिशा में कार्य करने को प्रेरित करता है।''

1904 में गोडार्ड वार्सेस्टर पालीटेक्नीक इंस्टीट्यूट से जुड़े। यद्यपि वे सामान्य विज्ञान कार्यक्रम में नामांकित थे, पर उनकी सर्वाधिक रुचि भौतिकी में थी, जहां उन्हें अंतरिक्ष यात्रा की कुंजी प्राप्त होने की उम्मीद थी। अंतरिक्ष उड़ान के बारे में उनका पहला आलेख 1907 में *साइंटिफिक अमेरिकन* में प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था, ''द यूज ऑफ द गायरोस्कोप इन द बैलेंसिंग एंड स्टीयरिंग ऑफ एयरप्लेन्स''। उसी वर्ष उनका ''आन द पासिबिलिटी ऑफ नेवीगेटिंग इंटरप्लैनेटरी स्पेस'' शीर्षक से लिखा गया पर्चा *पॉपुलर एस्ट्रोनॉमी* द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। इस अस्वीकार के लिए कारण बताते हुए सम्पादक ने लिखा : ''इसके बारे में अनुमान तो रुचिकर है लेकिन असंभाव्यता इतनी निश्चित है कि यह व्यावहारिक रूप से उपयोगी नहीं है। आपने स्पष्ट और अच्छा लिखा है लेकिन जैसा मैं देख रहा हूं – यह विज्ञान की दृष्टि में ठीक नहीं है।''

जूल्सवर्न (1826–1905)

1908 में गोडार्ड वार्सेस्टर पॉलीटेक्नीक इंस्टीट्यूट से उच्च श्रेणी के साथ स्नातक हुए। वे वार्सेस्टर में ही स्थित क्लार्क विश्वविद्यालय में प्रवेश लेना चाहते थे। लेकिन उनके माता–पिता की वित्तीय स्थिति ऐसी नहीं थी कि उन्हें क्लार्क विश्वविद्यालय में शिक्षा दिला सकें और इस प्रकार गोडार्ड ने 850 अमेरिकी डॉलर वार्षिक के वेतन पर वार्सेस्टर पॉलीटेक्नीक इंस्टीट्यूट में अध्यापन की नौकरी स्वीकार कर ली।

पॉलीटेक्नीक इंस्टीट्यूट में गोडार्ड की गतिविधियां केवल अध्यापन तक ही सीमित नहीं थीं। उन्होंने अंतरिक्ष उड़ानों के बारे में अपने विचारों का जोरदार ढंग से अनुसरण किया। इस अवधि के दौरान उन्होंने यह महसूस किया कि न्यूटन का प्रतिक्रिया सिद्धांत (या न्यूटन का तीसरा नियम) अंतरिक्ष में रॉकेट प्रक्षेपण की कुंजी रखता है। उन्होंने रॉकेट नोदन के मूल गणित पर काम करने का प्रयास किया। उन्होंने बहुस्तरीय या चरणबद्ध रॉकेट के लिए ढांचागत योजना विकसित की। उन्होंने ऊंचाई प्राप्त करने के लिए हाइड्रोजन और ऑक्सीजन के साथ ज्वलनशील जेट ईंधन का प्रयोग करते हुए एक सिद्धांत भी प्रस्तुत किया।

अल्बर्ट अब्राहम मिचेलसन (1852–1931)

1909 में उन्होंने क्लार्क विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। उस समय क्लार्क के उनके अध्यापकों में थे – ए.ए. मिचेलसन, अर्नेस्ट रदरफोर्ड, वीटो वॉल्टेरा तथा रॉबर्ट विलियम्स वुड। गोडार्ड ने अपनी स्नातकोत्तर उपाधि 1910 में प्राप्त की और एक वर्ष बाद उन्होंने भौतिकी में अपनी शोध उपाधि के लिए प्रवेश लिया। उनके पीएच.डी के पर्यवेक्षक आर्थर जी. वेब्सटर थे, जो एक प्रसिद्ध गणितीय भौतिकविद थे। उनके शोध का शीर्षक था, 'ऑन सम पीक्यूलियरटीज ऑफ इलेक्ट्रिकल कंडक्टिविटी इक्जीबिटेड बाई पाउडर, एंड ए फ्यू सॉलिड सबस्टैन्सेज।'' उनके पीएच.डी शोध प्रबंध का विषय उनकी पसंद का नहीं था। वैसे तो अपने कार्यों के आधार पर वे रेडियो के नये क्षेत्र में अपना कैरियर बना सकते थे, जैसाकि उनके अध्यापकों ने उन्हें सुझाया था। पीएच.डी. के बाद उन्होंने क्लार्क में

कुछ वर्ष और व्यतीत किए ताकि वे न्यूयार्क में कोलंबिया विश्वविद्यालय और मिसौरी विश्वविद्यालय से लाभदायी नौकरी का प्रस्ताव प्राप्त कर सकें। सितम्बर 1912 में गोडार्ड न्यूजर्सी स्थित प्रिंस्टन विश्वविद्यालय से जुड़ गये, जहां उन्हें 'विद्युत, चुम्बकत्व, अवरक्त और इलेक्ट्रॉन सिद्धांत' पर कार्य करने के लिए एक साल की शोध फेलोशिप का प्रस्ताव दिया गया था।

वीटो वॉल्टेरा

यद्यपि प्रिंस्टन में वे दिन में 'डिस्प्लेसमेंट करेन्ट एक्सपेरीमेंट' पर कार्य करते थे, लेकिन रात में उन्होंने रॉकेट नोदन के अपने सिद्धांत पर कार्य जारी रखा। वह अपने कार्य को लेकर इतने उत्साही और मग्न थे कि प्रायः वे पूरी रात कार्य करते हुए बिता देते थे। उनका कमजोर स्वास्थ्य लम्बे समय तक कठिन परिश्रम को बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उन्होंने अपने दोनों फेफड़ों में तपेदिक विकसित कर लिया था और वह प्रिंस्टन विश्वविद्यालय में उनके कार्य की समाप्ति का समय था। उन्हें कुछ सप्ताहों के लिए पूरी तरह आराम करने के लिए बाध्य किया गया। लेकिन जब उन्हें एक दिन में एक घंटे के लिए कार्य करने की अनुमति दी गयी तो गोडार्ड ने एक महीने के भीतर रॉकेट नोदन के तात्विक को शामिल करने वाले दो अमेरिकी पेटेंटों के लिए सामग्री प्रस्तुत कर दी – बहु–आवेशित ठोस – नोदक रॉकेट के लिए योजनाएं, तरल नोदक रॉकेट, बहु–स्तरीय रॉकेट, रॉकेट के ज्वलन चैम्बर में ईंधन भेजने की तकनीक और गैसों के निर्गमन के नियंत्रण हेतु एक निर्गम नोजल। वास्तव में जैसा गोडार्ड ने कहा भी – ''ये पेटेंट यथासंभव काफी निकट से उस प्रश्न का जवाब देते हैं कि 'गोडार्ड रॉकेट क्या है।''

सितम्बर 1914 में गोडार्ड भौतिकी के अंशकालिक अनुदेशक के रूप में क्लार्क विश्वविद्यालय से जुड़े। कक्षाओं के उपरान्त गोडार्ड अपना शेष सारा समय रॉकेट नोदन पर अपने शोध प्रबंध की प्रायोगिक जांच पर व्यतीत करते थे।

ऑरविल राइट
(1871–1948)

गोडार्ड अकेले ही कार्य कर रहे थे। उन्होंने अपने माता–पिता की कंपनी के मैकेनिकों की सहायता से अपने स्वयं के उपस्कर बनाये। एक स्थानीय औद्योगिक प्रयोगशाला के स्वामी ने उन्हें (गोडार्ड) इंकार करना कठिन पाया और उनके लिए बारूद मिश्रण का परीक्षण किया। किन्तु अपने अनुसंधानों के लिए गोडार्ड में अपना सीमित कोष बढ़ाने की सामर्थ्य न थी। उन्हें कहीं और से वित्तीय सहायता जुटाना जरूरी हो गया था। पहली वित्तीय सहायता उन्हें 1846 में वाशिंगटन डी.सी. में स्थापित स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट से प्राप्त हुई, जिसके बारे में उन्होंने सोचा भी नहीं था। यह इंस्टीट्यूट 'लोगों में ज्ञान की वृद्धि और प्रसार के लिए' स्थापित हुआ था। स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट के तत्कालीन सचिव चार्ल्स डी. वाल्कॉट द्वारा यह पूछे जाने पर कि उच्च स्तरीय रॉकेट की कीमत क्या होगी, गोडार्ड ने लिखा, 'मेरा यह सोचना है कि पांच हजार डॉलर से कम लागत में एक वर्ष से कम में इसे बनाया जा सकना संभव है।' 'अति–उच्चस्तर तक पहुंचने की पद्धति' के विकास से संबंधित उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया था और 8 जनवरी, 1917 को कार्य आरंभ करने के लिए 1000 अमेरिकी डॉलर की अग्रिम सहायता के चेक के साथ स्वीकृति–पत्र गोडार्ड को प्राप्त हुआ।

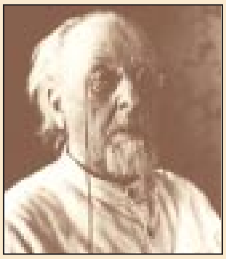

कॉन्सटेंटिन एडुआर्डोविच सियोल्कोवस्की

जब प्रथम विश्व युद्ध में अमेरिका शामिल हुआ, तब अमेरिकी सेना के सिग्नल कोर ने गोडार्ड (जिसकी सिफारिश स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट ने की थी) से युद्ध में प्रयुक्त होने वाले रॉकेट का विकास करने के लिए कहा। गोडार्ड ने अपनी प्रयोगशाला कैलिफोर्निया के पैसोडोना में स्थित माउंट विल्सन प्रयोगशाला में स्थानांतरित कर ली। 7 नवम्बर 1918 को गोडार्ड ने एक लंबी दूरी के बमवर्षक रॉकेट और आधुनिक बजूका के प्रारंभिक रूप वाले एक हल्के वजन के प्रक्षेपण रॉकेट को प्रदर्शित किया। लेकिन गोडार्ड के इस सफलतापूर्वक प्रदर्शन के मात्र चार दिन के बाद ही प्रथम विश्व युद्ध समाप्त हो गया था और अमेरिकी सेना ने गोडार्ड के इन युद्ध रॉकेटों के निर्माण को आगे बढ़ाना आवश्यक नहीं समझा। अतः गोडार्ड वापस वार्सेस्टर लौटे और क्लार्क विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में अपना कार्य पुनः आरंभ किया।

चार्ल्स ऑगस्ट्स लिन्डबर्ग

1916 में स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट को कोष प्रदान करने से संबंधित गोडार्ड द्वारा जमा किया गया आवेदन रॉकेट की दुनिया के लिए एक मिसाल बन गया। उनका यह प्रस्ताव और बाद में उनके द्वारा किए गये अन्य शोध व कार्यों को स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट द्वारा 1920 में प्रकाशित किया गया था। इसका शीर्षक था *'ए मेथड ऑफ रीचिंग एक्सट्रीम एल्टीट्यूड'*। आज इस दस्तावेज को रॉकेटों की दुनिया की एक बुनियादी रचना माना जाता है। हालांकि इसके प्रकाशन के समय गोडार्ड को सार्वजनिक रूप से उपेक्षा झेलनी पड़ी। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि समाचार पत्रों ने चांद तक रॉकेट के उड़ान से संबंधित गोडार्ड के वैज्ञानिक प्रस्ताव के अंतिम खंड, जिसका शीर्षक गोडार्ड की पुस्तक में 'अनंत ऊंचाई तक एक पाउंड को उठाने के लिए आवश्यक न्यूनतम घनत्व का परिकलन' था, को ही प्रचारित किया था। इस खंड में गोडार्ड ने यह कल्पना की थी कि एक दिन चांद तक रॉकेट को भेजना संभव हो सकेगा। उन्होंने चांद पर एक रॉकेट के पहुंचने और वहां आगमन के समय उड़ने वाले कणों की रूपरेखा भी प्रस्तुत की थी। 1920 में इस तरह का विचार एक दीवानापन और असमंजसपूर्ण था।

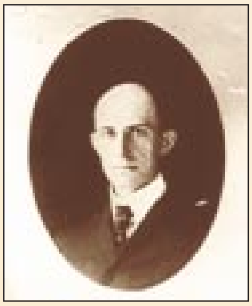

विलबर राइट (1867–1912)

16 मार्च, 1936 को स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट ने गोडार्ड की रिपोर्ट को 'लिक्विड–प्रोपेलेंट रॉकेट डेवलपमेंट' शीर्षक से प्रकाशित किया। 1919से गोडार्ड द्वारा किए गये प्रयोगों का संक्षिप्त विवरण इस रिपोर्ट में था, जो यह स्पष्ट करता है कि तरल ईंधन रॉकेट के निर्माण और प्रक्षेपण करने वाले प्रथम व्यक्ति गोडार्ड थे (16मार्च, 1926)। गोडार्ड ने तरल ईंधन प्रयुक्त करने वाले प्रथम रॉकेट का निर्माण और परीक्षण सफलतापूर्वक किया था। मौलिक रॉकेट गोडार्ड की चाची एफी के मैसाचुसेट्स के आवबर्न स्थित फार्म से उड़ा था, जो 41 फीट ऊपर गया और 184 फीट दूर बर्फ में गिरकर नष्ट हो गया था। इस उड़ान में 2.5 सेकेंड लगे थे। हालांकि यह प्रयोग बेहद शैशवावस्था में था, लेकिन 16 मार्च, 1926 को आवबर्न, मैसाचुसेट्स से उड़े गोडार्ड के रॉकेट की उड़ान की तुलना इतिहास में वर्णित किटी हॉक के राइट बंधुओं के साथ की गयी। यद्यपि राइट बंधुओं के मामले की तरह ही गोडार्ड का रॉकेट भी सरकारी अधिकारियों को प्रभावित करने में असफल रहा। अपने शोध एवं प्रशिक्षण के लिए उन्हें सरकार से कोई सहायता नहीं प्राप्त हुई। उन्हें नाममात्र की सहायता सिर्फ स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूशन और डेनियल गुगनहिम फाउंडेशन से ही प्राप्त हुई। उन्हें क्लार्क विश्वविद्यालय के वार्सेस्टर पॉलीटेक्नीक इंस्टीट्यूट से अनुपस्थित रहने की अनुमति भी प्राप्त हुई थी।

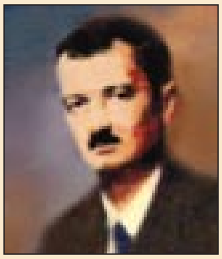

हर्मन ओबर्थ

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि गोडार्ड ने लोगों का ध्यान सर्वप्रथम 1907 में आकर्षित किया था जब वार्सेस्टर पॉलटेक्नीक इंस्टीट्यूट के भौतिकी भवन के तहखाने में रॉकेट प्रज्ज्वलन से धुएं का बादल उत्पन्न हुआ। सौभाग्यवश, विद्यालय के अधिकारियों ने उन्हें निलम्बित नहीं किया। गोडार्ड के समर्पित कार्य के जीवनकाल का यह आरंभ था।

अमेरिका में सन् 1964 में राबर्ट एच. गोडार्ड के सम्मान में जारी डाक टिकट

16 मार्च, 1926 को गोडार्ड की ऐतिहासिक उड़ान की तुरंत ही कोई सूचना नहीं दी गयी थी। वास्तव में लगभग एक दशक तक आम लोगों को इसकी जानकारी भी नहीं थी। गोडार्ड भी यह नहीं चाहते थे कि जब तक कोई उल्लेखनीय परिणाम नहीं प्राप्त हो जाये, लोगों को इसकी जानकारी हो। फलस्वरूप, 16 मार्च, 1926 को गोडार्ड द्वारा की गयी उड़ान के तुरत बाद आधुनिक रॉकेटों के विकास का द्वार नहीं खुला। गोडार्ड के कार्यों के बारे में विस्तृत जानकारी से अनभिज्ञ अन्य रॉकेट सिद्धांतवादी और प्रयोगकर्ता स्वतंत्र रूप से अपने–अपने रॉकेटों के विकास में लगे रहे। वास्तव में यह विश्वास किया जाता है कि एक रूसी स्कूल अध्यापक सिओलकोवस्की को प्रतिक्रिया सिद्धांत की समझ 1883 में ही हो गयी थी, परन्तु उन्हें इन सिद्धांतों के परीक्षण का कोई साधन नहीं उपलब्ध था। यद्यपि 1919 तक वे रॉकेट नोदन और अंतरिक्ष उड़ानों के सैद्धांतिक पहलुओं पर कार्य करते रहे। उन्होंने अपने लेखों में बहु–स्तरीय रॉकेट अैर ईंधन के रूप में तरल नाइट्रोजन और तरल ऑक्सीजन के प्रयोग का विवरण दिया है। सिओलकोवस्की ने 1935 में अपनी मृत्यु तक अपने सैद्धांतिक अनुसंधान को जारी रखा। रॉकेट विद्या और अंतरिक्ष यानिकी के क्षेत्र में एक अन्य महान अग्रणी वैज्ञानिक थे – हंगरी में जन्में जर्मन–भौतिकविद् हर्मन ओबर्थ। ओबर्थ जर्मनी के सबसे अग्रणी रॉकेट विद्या विशेषज्ञ बने। उनके छात्रों और अनुयायियों में – वार्नर ब्रॉन और विले ले जैसे वैज्ञानिक थे।

गोडार्ड की मृत्यु 10 अगस्त, 1945 को हुई।

1951 में नासा ने घोषित किया कि, 'रॉकेटों के क्षेत्र में डॉ. रॉबर्ट एच. गोडार्ड के कार्य सार्वभौमिक रूप से स्वीकार्य प्रारंभिक कार्य हैं और गोडार्ड के दो सौ पेटेंटों को प्रयोग में लाने का अधिकार हाल ही में 10 लाख डॉलर में हासिल किया गया है, जिसमें रॉकेटों के क्षेत्र में मौलिक आविष्कार, निर्देशित प्रक्षेपास्त्र और अंतरिक्ष खोज शामिल हैं। गोडार्ड की स्मृति में एक बृहत् विज्ञान प्रयोगशाला, नासा–गोडार्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर की स्थापना 1 मई, 1959 को मेरीलैंड के ग्रीन बेल्ट में की गयी। प्रतिनिधि सभा में पारित एक विधेयक के अनुसार अमेरिका में 16 मार्च को गोडार्ड के प्रति राष्ट्रीय श्रद्धांजलि दिवस के रूप में मनाया जाता है।

रॉबर्ट एच. गोडार्ड द्वारा लिखित पुस्तकें

1. *लिक्विड – प्रोपेलेन्ट रॉकेट डेवलपमेंट*, वाशिंगटन डी.सी. स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट, 1936.
2. *ए मेथड ऑफ रीचिंग एक्सट्रीम अल्टीट्यूडस*, वाशिंगटन, डी.सी. स्मिथसोनियन इंस्टीट्यूट, 1919.
3. *रॉकेट्स* : न्यूयॉर्क : अमेरिकन रॉकेट सोसायटी, 1946.
4. *रॉकेट डेवलपमेंट : लिक्विड फ्युएल रॉकेट रिसर्च 1929–1941* (संस्करण), ईस्थर सी. गोडार्ड एंड जी. एडवर्ड पेन्ड्रे, इंगलवुड क्लिफ्स, एन.जे. : प्रेंटिस–हाल, 1948.
5. द पेपर्स ऑफ रॉबर्ट एच. गोडार्ड 3 खंड (संस्करण), ईस्थर सी. गोडार्ड एंड जी. एडवर्ड पेन्ड्रे, न्यूयॉर्क : मैक्ग्रा हिल, 1970.

और अधिक जानकारी हेतु पुस्तकें

1. *रॉबर्ट गोडार्ड : ट्रेल ब्लेजर टु द स्टार्स* – चार्ल्स ड्यूथर्टी, न्यूयॉर्क, मैकमिलन, 1964
2. *दिस हाई मैन – मिल्टन लेहमैन*, न्यूयॉर्क : फारर, स्ट्रास एंड कंपनी, 1963
3. *ड्रीमर्स एंड डोअर्स : इन्वेंटर्स टू चेंज्ड द वर्ल्ड* – नारमन रिचर्ड्स, न्यूयॉर्क : अयेनियम, 1984
4. रॉबर्ट गोडार्ड : फादर ऑफ द स्पेस एज – चार्ल्स एस. वेराल, एन.जे. इंगलवुड क्लिफ्स, प्रेंटिस हाल, 1963
5. *द इन्टेलिजेंट मैन्स गाइड टु साइन्स* (खंड–1) – आइज़क आसीमोव, न्यूयॉर्क बेरिक बुक्स, 1960
6. *द एक्सप्लोरेशन ऑफ स्पेस* – आर्थर सी. क्लार्क, न्यूयॉर्क : हार्पर एंड ब्रदर्स, 1951
7. *हिस्ट्री ऑफ रॉकेट टेक्नोलॉजी* – यूगेन इम्मी, डेट्रायट : वाएन स्टेट युनिवर्सिटी प्रेस, 1964
8. *बियान्ड द सोलर सिस्टम* – विली ले, न्यूयॉर्क : वाइकिंग प्रेस, 1964
9. *मिसाइल्स एंड स्पेस ट्रेवेल* – विली ले, न्यूयॉर्क : वाइकिंग प्रेस, 1954
10. *डिसीजन टु गो टु द मून* – जॉन लाग्सडॉन, कैम्ब्रिज एमआईटी प्रेस, 1970
11. *रॉकेट्स इन टु स्पेस* – फ्रैंक एच. विन्टर कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स एंड लंदन : हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1990
12. *रॉबर्ट हचिंग गोडार्ड : पायनियर ऑफ रॉकेटरी एंड स्पेस फ्लाइट* – सुज़ाने एम. क्वायल, हैदराबाद : युनिवर्सिटी प्रेस (इंडिया) लिमिटेड
13. *रॉबर्ट एच. गोडार्ड – पायनियर ऑफ स्पेस रिसर्च* – मिल्टन लेहमैन, न्यूयॉर्क : डा कापो प्रेस, 1988
14. *रेट्रो रॉकेट्स – एक्सपेरिमेंटल रॉकेट्स* (1926–1941) – पीटर आलवेज, एन आर्बर, मिशिगन : सैटर्न प्रेस, 1996

• • •

माननीय मंत्री श्री बच्ची सिंह रावत से, ब्रेल पुस्तकें प्राप्त करने वाले नेशनल एसोसिएशन फॉर दि ब्लाइंड के दो बच्चे

पृष्ठ 1 का शेष......

- अनुसंधान एवं विकास सांख्यिकी पर प्रकाशन, बाहरी अनुसंधान एवं विकासों की सूची; विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी डाटा बुक तैयार करना; एवं अनुसंधान और विकास में संलग्न संस्थाओं की सूची।
- डाटाबेस सर्च तैयार करना मुख्यतः (1) अनुसंधान विकास संस्थाओं का डाटाबेस (2) बाहरी अनुसंधान एवं विकास का डाटाबेस
- तत्वाधायी अनुसंधान – प्रोजेक्ट के अनुमोदन हेतु कुछ नियमावली और रूपरेखाओं का निर्माण
- प्रोजेक्ट रिपोर्ट – एन.एस.टी.एम.आई.एस. के तत्वावधान में आयोजित कुछ प्रोजेक्टों की रिपोर्ट
- कुछ उपयोगी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी साधन – भारत सरकार की विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी नीतियां
- लिंक्स् (links)– विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी प्रबंधन में संलग्न कुछ बेव–साइट के पतों का संकलन

यह साइट मुख्यतः नीति विशेषज्ञ, योजनाकारों, अनुसंधानकर्त्ताओं, अकादमी सदस्यों, वैज्ञानिकों, एवं प्रौद्योगिकीविदों, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थाओं, और विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी उपकरणों में संलग्न निर्यातकों के लिए उपयोगी होगी।

देश में उपलब्ध विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से संबंधित साधनों की आधुनिक जानकारी के लिए WWW.ndymis-dst.org पर लॉग करें।

• • •

पास्कल और उनका त्रिकोण

❒ उत्पल मुखोपाध्याय*

ब्लैस पास्कल (1623–1662) का जन्म 19 जून, 1623 को फ्रांस के अवर्जन क्षेत्र में स्थित क्लेर्मोंट में हुआ था। सिर्फ चार वर्ष की उम्र में उन्होंने अपनी मां को खो दिया। उनके पिता, एटीएन पेशे से वकील होने के साथ ही शौक से एक गणितज्ञ भी थे। यहां यह उल्लेख, करना चाहिए कि एटीएन *'लिमाकॉन ऑफ पास्कल'* सिद्धांत के प्रवर्तक थे न कि उनके पुत्र, जिसमें एक वक्र (ब्नतअम) मानव किडनी की तरह लगता है। हालांकि पास्कल ने अपनी प्रवीणता का प्रदर्शन काफी पहले ही कर दिया था परंतु उनका शरीर गठन पूर्णतः ठीक नहीं था। अतः गणित के प्रति पास्कल का अत्यधिक लगाव उनके पिता के लिए चिंता का विषय था। किशोरावस्था में ही ज्यामिति पर उनकी विशेषज्ञता एक दंतकथा बन गयी। सिर्फ 14 वर्ष की उम्र से ही वे अपने पिता के साथ पेरिस के गणितज्ञों की बैठकों में हिस्सा लेने लगे थे। पास्कल ने 16 वर्ष के उम्र में ही अपने एक पत्र, शीर्षक ''एस्साई पॉर लेस कोनिक्यूस'' में ''षड्भुजाकार रहस्यवाद'' का प्रसिद्ध सिद्धांत प्रस्तुत कर दुनिया को चौंका दिया था। वर्तमान में इस सिद्धांत को 'पास्कल के सिद्धांत' के रूप में जाना जाता है (चित्र–1)। इस सिद्धांत के अनुसार– ''शंकु–गणित में उत्कीर्ण एक षड्भुज के विपरीत पार्श्व के प्रतिच्छेदन के तीन बिंदु एक रेखस्थ होते हैं।'' दो वर्ष उपरांत उन्होंने विश्व के प्रथम परिकलन यंत्र का आविष्कार किया। इस समय के उपरांत उनका स्वास्थ्य और बिगड़ने लगा और बदहजमी, अनिद्रारोग तथा मानसिक विषाद उनके शेष जीवन के सहचर बन गये। इसके बावजूद उन्होंने गणित और भौतिकी के विविध क्षेत्रों में अपना बौद्धिक अभ्यास जारी रखा।

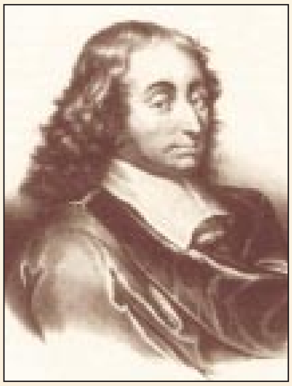

ब्लैस पास्कल (1623–1662)

अंततः इस गणितीय प्रतिभा ने अगस्त 1962 में अपनी अंतिम सांस ली। उस समय वे चालीस की उम्र तक भी नहीं पहुंचे थे। कम से कम अपने दो कार्यों के लिए पास्कल हमेशा याद किये जाते रहेंगे, जो हैं, पास्कल का सिद्धांत, जिसका उल्लेख पहले किया गया है और प्रायिकता सिद्धांत के क्षेत्र में पियारे डी फर्मेट (1601–1665) के साथ पथ प्रदर्शक का कार्य किया। लेकिन यहां पास्कल के एक अन्य गणितीय कार्य, यथा– पास्कल के त्रिकोण पर विचार–विमर्श किया जायेगा।

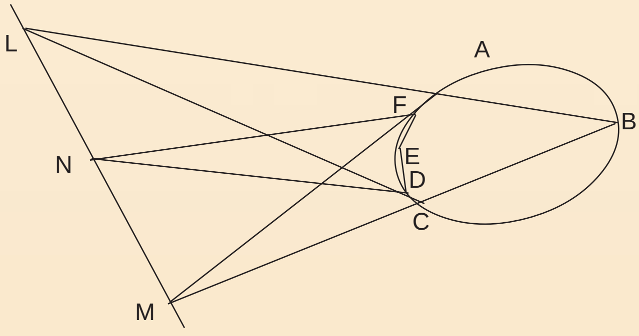

चित्र 1 : L.N.M. एकरेखस्थ हैं।

पास्कल का त्रिकोण

ज्यामितीय त्रिकोणों के विपरीत पास्कल का त्रिकोण संख्याओं का एक आयताकार विन्यास है। पास्कल ने अपने *'ट्रेट डू ट्राएंगल अर्थमेटिक्यू'* (अंकगणित त्रिकोण पर शोध–प्रबंध) में इस त्रिकोण का वर्णन किया। यह पुस्तक उनके मरणोपरांत 1665 में प्रकाशित हुई। पास्कल के त्रिकोण का निम्न भाग अनंत तक विस्तारित है। चित्र–2 में त्रिकोण का हिस्सा दर्शाया गया है।

							1							
						1		1						
					1		2		1					
				1		3		3		1				
			1		4		6		4		1			
		1		5		10		10		5		1		
	1		6		15		20		15		6		1	
1		7		21		35		35		21		7		1

चित्र 2 : पास्कल त्रिकोण

यहां यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि पास्कल की किताब के प्रकाशन से काफी वर्ष पहले टारटाग्लिया के नाम से प्रसिद्ध निक्कोलो के फॉन्टाना (1500–1567) ने *'जनरल ट्रिटाइज ऑन नंबर एंड मेजर'* नामक पुस्तक लिखी थी, जिसमें संख्याओं के एक आयताकार विन्यास पर विचार–विमर्श किया गया था। इस विन्यास की संख्याएं पास्कल के त्रिकोण की संख्याओं के समरूप थीं, पर उनका विन्यास आयताकार था (चित्र–3)। हालांकि इस त्रिकोणात्मक विन्यास की जानकारी काफी पहले 16वीं शताब्दी में चीनियों को और गिरोलामो कारडानो (1501–1576) को थी, परंतु इस त्रिकोण का 'पास्कल के त्रिकोण' के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह पास्कल ही थे जिन्होंने इस विन्यास के विविध गुणों को पहचाना और उनका इस्तेमाल गणित के विविध क्षेत्रों में किया। विविध गुणों पर कार्य करने के दौरान पास्कल ने 'गणितीय अधिष्ठापन के सिद्धांत' की खोज की जो आधुनिक गणित के स्तंभों में से एक है। इस सिद्धांत का इस्तेमाल कर इस त्रिकोण के विभिन्न गुणों को बेहद सरलता से सिद्ध किया जा सकता है।

1	1	1	1	1	1
1	2	3	4	5	6
1	3	6	10	15	21
1	4	10	20	35	56
1	5	15	35	70	126
1	6	21	56	126	252
1	7	28	84	210	462
1	8	36	120	330	792

चित्र 3 : टारटाग्लिया का आयत

पास्कल के त्रिकोण के निर्माण के नियम को 'पास्कल की विधि' के रूप में जाना जाता है और इस विन्यास की पंक्तियों को, 'पास्कल की पंक्तियां' कहा जाता है। इस विन्यास के दो पार्श्वों का निर्माण सिर्फ 1 का प्रयोग कर किया जाता है और कोई मध्यवर्ती संख्या 'A', 'A' ठीक ऊपर की पंक्ति की दो संख्याओं का योग होता है। इन दो संख्याओं में से एक A के बायीं तरफ रहता है और एक A के दायीं तरफ रहता है। उदाहरणस्वरूप, पांचवीं पंक्ति की दूसरी संख्या, जो 10 है ठीक अपने ऊपर वाली पंक्ति अर्थात् चौथी पंक्ति की संख्याओं 4 और 6 का योग है। यह याद रखना चाहिए कि सबसे ऊपर की पंक्ति को 'शून्य पंक्ति' के रूप में जाना जाता है और कोई भी संख्या जो किसी पंक्ति के अत्यधिक बायें पार्श्व में होती है, को 'शून्य संख्या' के रूप में जाना जाता है। पास्कल ने अपनी पुस्तक में चित्र–2 की तरह त्रिकोणात्मक विन्यास का वर्णन किया है। अगर हम चित्र–2 के त्रिकोण को घड़ी के विपरीत दिशा में 45° के कोण में घुमायें तो हमें चित्र–4 प्राप्त

होगा। चित्र–4 का विन्यास विविध गुणों को रखता है जिनमें से सिर्फ तीन का उल्लेख नीचे किया गया है।

1	1	1	1	1	1	1	1	1	1
1	2	3	4	5	6	7	8	9	
1	3	6	10	15	21	28	36		
1	4	10	20	35	56	84			
1	5	15	35	70	126				
1	6	21	56	126					
1	7	28	84						
1	8	36							
1	9								
1									

चित्र 4 : पास्कल के त्रिकोण का परिवर्तित रूप

गुण

1. इस विन्यास की कोई संख्या A, A वाली पंक्ति के ठीक ऊपर की क्षैतिज पंक्ति की सभी संख्याओं (ठीक ऊपर की संख्याओं तक) का योग होती है (चित्र–5)।

P	Q	R	S	T		
				A		

चित्र 5 : A=P+Q+R+S+T

2. इस विन्यास की कोई संख्या A ऊर्ध्वाधर स्तंभ में A के ठीक बायीं तरफ की सभी संख्याओं का योग होती है (चित्र–6)।

		P				
		Q				
		R				
		S	A			

चित्र 6 : A=P+Q+R+S

3. अगर इस विन्यास की कोई संख्या । होगी तब आयताकार विन्यास के सभी कतार और सभी पंक्ति या जो A के कतार और पंक्ति के ठीक ऊपर और बायीं तरफ होती है, की सभी संख्याओं के योग (A-1) के बराबर होती है (चित्र–7)।

P	S				
Q	T				
R	U				
		A			

चित्र 7 : A-1=P+Q+R+S+T+U

आइये, अब हम पास्कल के त्रिकोण के मौलिक रूप (चित्र–2) पर लौटें। A त्रिकोण की किसी भी पंक्ति की संख्यायें निर्दिष्ट होती हैं, जैसे– शून्य, प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि। उदाहरण के लिए, छठीं पंक्ति की दूसरी संख्या 15 है। अगर दवीं पंक्ति की kवीं संख्या T निर्दिष्ट है (n,k), तब साक्ष्यानुसार, T (0,0)=1, T(6,2)=15, Y(7,4)=35 इत्यादि। यहां, n>=0 और k=0,1,2 ....n. अगर] को स्थिर रख हम n को परिवर्तित करते हैं तब हमें T(0,k), T(1,k), T(2,k), T(3,k) आदि संख्यायें प्राप्त होती हैं और जब k=1 होता है तब संख्यायें 1,2,3,4,5,6 आदि बन जाती हैं। यह संख्यायें और कुछ नहीं टारटाग्लिया के आयताकार की प्रथम क्षैतिज कतार (या ऊर्ध्वाधर पंक्ति) की संख्याएं हैं। इन संख्याओं को त्रिकोणात्मक संख्यायें कहा जाता है, क्योंकि अगर हम समान आकार के पिण्ड का प्रयोग कर एक त्रिकोण बनाना चाहते हैं तो हमें इतनी ही संख्या में पिण्डों की जरूरत पड़ेगी (चित्र–8)।

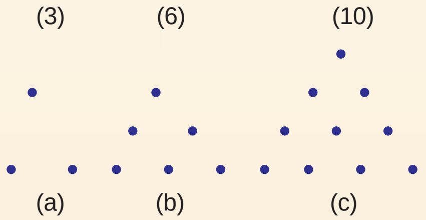

चित्र 8 : त्रिकोणीय अंक

इसी तरह, जब k=3 तब हमें 1,4,10,20,35,56 आदि संख्यायें प्राप्त होती हैं, जिन्हें चतुष्फलकीय संख्याओं के रूप में जाना जाता है क्योंकि जब हम समान आकार के पिण्डों या गोले का प्रयोग कर चतुष्फलकीय संरचना बनाना चाहते हैं तो हमें इतनी ही संख्याओं में गोलों की आवश्यकता पड़ती है (चित्र–9)।

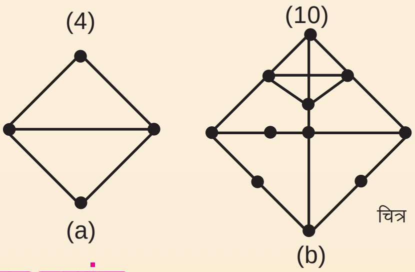

चित्र 9 : चतुष्फलकीय संख्या

द्विपद गुणांक

हम जानते हैं,

$(1+x)^0=1$

$(1+x)^1=1+x$

$(1+x)^2=1+2x+x^2$

$(1+x)^3=1+3x+3x^2+x^3$

$(1+x)^4=1+4x+6x^2+4x^3+x^4$ इत्यादि।

उपर्युक्त द्विपद विस्तारण को निकट से देखें तो यह पता चलता है कि पास्कल के त्रिकोण की विभिन्न पंक्तियों से द्विपद गुणांक को प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, $(1+x)^2$ के विस्तारण में ग के विभिन्न घातों का गुणांक द्वितीय पंक्ति से प्राप्त किया जा सकता है, $(1+x)^3$ के विस्तारण में गुणांक की प्राप्ति पास्कल के त्रिकोण के तृतीय पंक्ति से प्राप्त किया जा सकता है और इसी तरह आगे अन्य गुणांक प्राप्त किया जा सकता है। इसी तरह, $(1+x)^n$ के विस्तारण में द्विपद गुणांक है $^nC_0\ ^nC_1\ ^nC_2$ .... इत्यादि।

इस प्रकार, $^nC_k=T(n,k)$ .... (1)

पुनः, पास्कल के त्रिकोण को निकट से देखने से यह स्पष्ट होता है कि द्वितीय पंक्ति की संख्याओं का योग 2^2 है, तृतीय पंक्ति की संख्याओं का योग 2^3 है, चौथी पंक्ति के संख्याओं का योग 2^4 और क्रमशः।

अतः, इसी रूप में, हम कह सकते हैं कि दवीं पंक्ति की संख्याओं का योग 2^n होगा। चूंकि, दवीं पंक्ति की संख्यायें और कुछ नहीं, बल्कि $(1+x)^n$ के विस्तारण में विभिन्न ग घातों के गुणांक हैं तब,

$^nC_0+^nC_1+^nC_2+$............$+^nC_n=2^n$ ....(2)

शेष पृष्ठ 16 पर ......

समुद्री जैविक अनुसंधान केन्द्र

स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने में सन्नद्ध

❑ दिलीप एम. सालवी

हाल के दिनों में मत्स्यग्रहण को काफी महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। सागर और महासागरों की गवेषणा केवल खाद्य के लिए ही नहीं अपितु खनिज एवं औषधियों के लिए भी की जाने लगी है। आज, मत्स्यग्रहण भारत में एक वर्धमान उद्योग है और एक कैरियर के रूप में काफी लाभदायक (Lucrative) भी है। भारत में मत्स्यग्रहण के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन को संभव बनाने वाले अनुसंधान केन्द्रों में से एक 'समुद्री जैविक अनुसंधान केन्द्र' के बारे में बहुत कम ही जाना जाता है। यह केन्द्र महाराष्ट्र के रमणीय समुद्रतटीय शहर रत्नागिरि में अवस्थित है। इस केन्द्र ने स्थानीय मछुआरों के व्यावसायिक हित के लिए मात्र मत्स्य सहित विभिन्न प्रकारों के समुद्री जीवों तथा समीपवर्ती तटरेखा, द्वीपों एवं महाद्वीपीय उपतट पर ही महत्त्वपूर्ण अनुसंधान नहीं किये हैं बल्कि स्थानीय मत्स्यग्रहण संबंधी क्रियाकलापों पर अध्ययन और उसमें सुधार भी किया है। साथ ही, इसने इस क्षेत्र में अत्यधिक मछली पकड़ने पर रोक लगाने के लिए नियमों व विनियमों की सिफारिश भी की है। यह केन्द्र इस क्षेत्र एवं अन्य स्थानों में मत्स्य खेती के लिए व्यावसायिक रूप से महत्त्वपूर्ण समुद्री जीवों के बीज, एक्वेरियम मछलियों एवं उनके भोजन (चारे) का उत्पादन और आपूर्ति भी करता है। आज यही इस केन्द्र की आय अर्जन का स्रोत है। केन्द्र के प्रभारी वैज्ञानिक डॉ. एस.जी. बेलसरे का गर्व से कहना है कि ''हम स्थानीय लोगों को मात्स्यिकी संबंधी कार्यों में कुशल बनाने में योगदान देते हैं ताकि वे अपनी आजीविका के लिए अर्जन कर सकें।''

रत्नागिरि, महाराष्ट्र में स्थित समुद्री जैविक अनुसंधान केन्द्र

44 वर्ष पूर्व 1958 में महाराष्ट्र सरकार ने राज्य में वैज्ञानिक रूप से मात्स्यिकी के नियोजित विकास के लिए इस केन्द्र की स्थापना की। सुप्रसिद्ध मात्स्यिकी वैज्ञानिक डॉ. एच.जी. केवलरमानी को केंद्र का प्रभारी नियुक्त किया गया तथा उनको सहयोग प्रदान करने के लिए इंग्लैंड से प्रशिक्षित युवा वैज्ञानिक डॉ. माधव आर. रानडे का चयन किया गया। डॉ. रानडे के सक्षम एवं गतिशील (ऊर्जावान) नेतृत्व में ही यह केन्द्र विकसित व समृद्ध हुआ तथा इस केन्द्र को वह प्रस्थिति मिली जो आज मात्स्यिकी विज्ञान जगत में उसे प्राप्त है। 1980 में उनकी मृत्यु के पूर्व उनकी संकल्पना पूरी हो गयी– स्थानीय महाविद्यालयों में मात्स्यिकी एक व्यावसायिक विषय के रूप में शामिल हुआ तथा रत्नागिरि में मात्स्यिकी महाविद्यालय की स्थापना की गयी।

पॉलिथीन के थैले में बाजार के लिए तैयार झींगा का बीज

डॉ. रानडे ने स्थानीय मछुआरों के लाभ के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण अध्ययन एवं उनका प्रदर्शन संचालित किया। उन्होंने मछलियों, जालों एवं मत्स्य उत्पादों के बारे में मछुआरों की भ्रांत धारणाओं को भी सुधारा। उदाहरण के लिए, उन्होंने केन्द्र के लिए 'आर.वी. वर्षा' नामक अनुसंधान पोत लाकर स्थानीय आबादी को मोटरीकृत मत्स्यग्रहण से परिचय कराया। डॉ. रानडे के पुत्र और कोंकण कृषि विद्यापीठ, यह केन्द्र जिसका अब एक हिस्सा है, के तहत आने वाले मात्स्यिकी महाविद्यालय के प्रो. अनिल रानडे याद करते हुए कहते हैं, ''उन दिनों, मछुआरे इस बात से डरे हुए थे कि आवाज करने वाली मोटरीकृत नावों की वजह से मछलियां दूर भाग जाती हैं। मछली पकड़ने के लिए वे मोटरीकृत नावों को अपना लें, इसके लिए उनके समक्ष लगातार उसका प्रदर्शन करना और समझाना आवश्यक था।''

एक बार जब स्थानीय मछुआरे मोटरीकृत नावों और जलपोतों द्वारा पकड़ी जाने वाली मछलियों की पर्याप्त उच्च मात्रा (उत्पादन) के बारे में जान गये, तब इस क्षेत्र के मत्स्यग्रहण उद्योग में उल्लेखनीय संवृद्धि दर्ज की गयी। उसके बाद इसमें काफी तेजी से विकास हुआ। आज मत्स्य संबंधी उद्योग समुद्री जैविक अनुसंधान केन्द्र के समीप छत्रक की भांति उग आये हैं। समीप में मत्स्य नावों के लिए एक पोतघाट की स्थापना के साथ, केन्द्र अपनी पृष्ठभूमि की ओर पीछे हट गया। वर्तमान समय में रत्नागिरि में लगभग 800 मात्स्यिकी जलपोत हैं।

आजकल ये केन्द्र स्थानीय लोगों में एक समुद्री अनुसंधान केन्द्र के बजाय 'मचलया' (एक्वेरियम) के लिए ज्यादा प्रसिद्ध है। इसकी वजह है केन्द्र के नये बहुमंजिले भवन के भूतल पर बना स्थानीय मछलियों का एक्वेरियम। एक्वेरियम के अतिरिक्त केन्द्र के भवन में एक छोटा–सा सुव्यवस्थित संग्रहालय भी है जिसमें केन्द्र के अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा एकत्रित समुद्री पेड़–पौधों एवं जीवों को रखा गया है। इनमें से दो प्रमुख आकर्षण हैं– पहला, व्हेल का एक कंकाल– यह व्हेल समीपवर्ती तट पर धंस जाने से मर गयी थी; और दूसरा, प्रथम मोटरीकृत मत्स्य नाव आर.वी. वर्षा। अपने प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अल्फांसो आमों के लिए और यहां तक कि बाल गंगाधर तिलक का जन्मस्थान होने के कारण ज्यादा प्रसिद्ध इस स्थान पर एक बेहतर प्रसिद्ध कार्यक्रम (Outreach Programme) के लिए अच्छा प्रयास किया गया है। पर्यटकों सहित प्रतिवर्ष 50 से 60 हजार लोग एक्वेरियम और संग्रहालय देखने रत्नागिरि आते हैं जिससे केन्द्र के रखरखाव के लिए पर्याप्त पैसे प्राप्त होते हैं।

चूंकि केन्द्र के भवन के भूतल के अधिकांश हिस्से पर एक्वेरियम एवं संग्रहालय फैला हुआ है, इसलिए भवन की ऊपरी मंजिलों पर इसकी विभिन्न विशेषीकृत प्रयोगशालाएं, यथा– एक्वेरियम मत्स्य प्रयोगशाला, शैवाल संवर्धन प्रयोगशाला, समुद्री झींगा संतति प्रयोगशाला, स्वच्छ जल झींगा संतति प्रयोगशाला और मस्कोलान प्रयोगशाला, स्थित हैं। 1971 से इस केन्द्र को कोंकण कृषि विद्यापीठ में समाहित कर लिया गया, जिसका मुख्यालय डपोली में स्थित है। अब यह अनुसंधानकर्त्ताओं, छात्रों एवं मत्स्य उद्योगों के बीच बेहतर समन्वय के लिए शिरगांव के समीप स्थित मात्स्यिकी महाविद्यालय से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ गया है। वर्तमान समय में इसके तीन प्रायोगिक संवर्धन स्थल हैं– पहला मात्स्यिकी महाविद्यालय में, दूसरा कृषि अनुसंधान केन्द्र, कुदाल में; तीसरा खारलैण्ड मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र, पनवेल में।

दशकों से इस केन्द्र ने महाराष्ट्र के 720 किलोमीटर लम्बे समुद्रीतट पर मत्स्य उद्योग के विकास में बहुत–से महत्त्वपूर्ण योगदान दिये हैं। केन्द्र के अनुसंधानकर्त्ताओं ने समीपवर्ती अरब सागर, एस्चुअरी (नदमुख) एवं संकरी खाड़ी में विभिन्न गहराइयों पर और समुद्र तट पर समुद्री जीवों के स्थानीय प्रकारों को निर्धारित करने के लिए कई सर्वेक्षण किये हैं। उन्होंने झींगा और सीप जैसे तेजी से विकसित होने वाले समुद्री जीवों की नयी नस्लों का विकास किया है, जिनका इस क्षेत्र में व्यावसायिक महत्त्व बहुत अधिक है। उन्होंने इन समुद्री जीवों के संवर्धन के लिए प्रायोगिक हैचरियों की भी स्थापना की है, गोल्डफिश और राउंड दि इयर जैसी प्रसिद्ध घरेलू एक्वेरियम मछलियों के संवर्धन के लिए तकनीक का विकास किया है, तथा निम्नस्तरीय मछलियों से फिश बॉल्स, फिश फिंगर्स, फिश एंड प्रॉन

पाउडर तथा केक जैसे नये मूल्य संवर्धित उत्पादों का निर्माण किया है। निम्नस्तरीय मछलियों से मुर्गियों एवं एक्वेरियम मछलियों के तीव्र विकास के लिए भोजन भी बनाया जाता है।

केन्द्र के अनुसंधानकर्त्ताओं ने विभिन्न प्रकार के मत्स्यग्रहण जालों एवं उनकी प्रभावकारिता का भी अध्ययन किया है। मत्स्यग्रहण जालों के छेद के अनुकूलतम आकार के रूप में 38.1 मिलीमीटर की सिफारिश की गयी है ताकि वृद्धिशील छोटी मछलियों को पकड़ने से बचा जा सके। धुंआ छोड़ने वाली मछलियों (Puffer fish) से जालों के खराब होने से बचाने के लिए कोलतार और डीजल के मिश्रण के प्रभावकारिता का प्रदर्शन किया गया। अनुसंधानकर्त्ताओं ने झींगा से 'चितोसन' निकालने की तकनीक का भी विकास किया है। उल्लेखनीय है कि चितोसन का इस्तेमाल शराब और दवा उद्योग में होता है। राष्ट्रीय कृषि प्रौद्योगिकी परियोजना के तहत उन्होंने मछलियों पर उनके कीमती उपोत्पाद, जैसे– शार्क के दांत से बना आभूषण, मछलियों के एयर–ब्लाडर से औद्योगिक फिल्टर, मछली की आंत से शल्य–धागा, आदि के लिए अध्ययन भी संचालित किया है।

केन्द्र में बेरोजगार युवकों के लिए एक्वेरियम मछलियों के पालन एवं संवर्धन पर चल रहा एक प्रशिक्षण

इसके अलावा यह केन्द्र स्थानीय किसानों और बेरोजगार युवकों को मौके पर प्रशिक्षण देने के लिए नियमित रूप से कार्यशाला संचालित करता है कि रूके हुए और स्वच्छ पानी में झींगा और सीपों के संवर्धन के लिए हैचरियों की स्थापना कैसे की जाये तथा एक्वेरियम मछलियों, जिनकी काफी मांग है, के विभिन्न प्रकारों का कैसे पालन व संवर्धन किया जाये। केन्द्र की गतिविधियों के बारे में बताते हुए डॉ. बेलसरे कहते हैं, ''आगे आने वाले वर्षों में हम एक्वेरियम मछलियों पर अनुसंधान संचालित करने का विचार रखते हैं ताकि इनको विदेशों में निर्यात किया जा सके। हम यह अध्ययन करने के लिए योजना बना रहे हैं कि कैसे मौसम परिवर्तन के साथ मछली पकड़ने के साधनों में बदलाव लाया जाये; कैसे पर्स जाल की तरह के मत्स्यग्रहण जालों को क्षति होने से बचाया जाये; और कैसे स्वच्छ जल में मोतियों का विकास किया जाये। सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि हम इस क्षेत्र में अत्यधिक मत्स्यग्रहण से उत्पन्न होने वाली वर्तमान समस्याओं का अध्ययन करने का विचार रखते हैं, ताकि मत्स्यग्रहण एक आर्थिक रूप से सुरक्षित उद्योग बना रहे।''

– हिन्दी रूपांतरण: अनिल कुमार द्विवेदी

• • •

पृष्ठ 14 का शेष ......

पुनः, समीकरण (2) का बायां पार्श्व द नामक विभिन्न वस्तुओं की किसी संख्या (एक या दो या तीन आदि) की कुल संख्या होता है। अतः, हम पाते हैं कि किसी खास संख्या की वस्तुओं से कितनी संख्या में वस्तुओं का चुना जाना है, इसका निर्धारण भी पास्कल के त्रिकोण से किया जा सकता है।

एक रोचक समस्या

आइए, हम चित्र–10 की तरह के सड़कों के संजाल पर विचार करें। मान लें कि 2^{1000} लोग A से आरंभ करते हैं। इनमें से आधे L दिशा का अनुसरण करते हैं और आधे R दिशा का। पुनः, प्रथम संधि स्थान पर पहुंचने पर L दिशा में चलने वाले कुल लोगों में से आधे लोग L दिशा का अनुसरण करते हैं और अन्य आधे R दिशा का अनुसरण करते हैं।

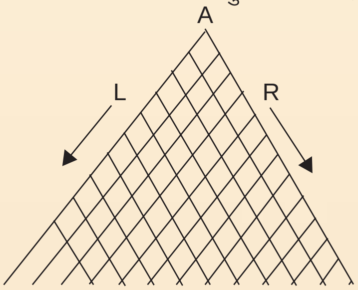

चित्र 10 : त्रिकोणीय अंक

इसी तरह प्रारंभ में R दिशा का अनुसरण करने वाले भी प्रथम संधि स्थान से L और R दिशा में आधे–आधे बंट जाते हैं। अगर यह प्रक्रिया प्रत्येक संधि स्थान के उपरांत जारी रही तो कितने लोग संजाल की 1000वीं पंक्ति में 1000 संधि स्थान पर होंगे?

पास्कल के त्रिकोण का प्रयोग कर यह दिखाया जा सकता है कि संजाल की 1000वीं पंक्ति के प्रत्येक संधि स्थान पर लोगों की संख्या पास्कल के त्रिकोण की 1000वीं पंक्ति में संख्याओं के समान होगी।

11 का घात

11 के विभिन्न घातों का मूल्य पास्कल के त्रिकोण से ज्ञात किया जा सकता है। अगर हम पास्कल के त्रिकोण की किसी पंक्ति में किसी संख्या को बड़ी संख्या मानते हैं तो 11 का एक घात यही बड़ी संख्या होगी। उदाहरणस्वरूप, पास्कल के त्रिकोण की द्वितीय पंक्ति में तीन संख्याएं 1,2,1 होती हैं। अतः, बड़ी संख्या 121 होगी जो 11 का वर्ग होगा। इसी तरह, तृतीय पंक्ति में चार संख्या 1,3,3,1 होती है। अतः, बड़ी संख्या 1331 है जो 11 का घन होगा। अतः, पास्कल के त्रिकोण के दसवीं पंक्ति की संख्या द्वारा निर्मित बड़ी संख्या 11^n है।

प्रायिकता के सिद्धांत में प्रयोग

पास्कल के त्रिकोण का प्रयोग प्रायिकता सिद्धांत में विभिन्न तरीके से किया जा सकता है। यहां, हम एक उदाहरण पर विचार करेंगे। अगर हम विभिन्न संख्याओं वाले सिक्कों को उछालें तो कितनी संख्या में 'शीर्ष' या 'पट' आयेगा, इसे पास्कल के त्रिकोण की किसी पंक्ति की विभिन्न संख्याओं से ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अगर हम दो सिक्के उछालते हैं तो परिणाम होगा– 1. दो शीर्ष, 2. एक शीर्ष और एक पट और 3. दो पट। अब, दो शीर्ष आयेंगे एक तरह (HH) से, एक शीर्ष और एक पट आयेंगे दो तरह से (HT, TH), जबकि दो पट एक तरह (TT) से आ सकते हैं। पुनः, पास्कल के त्रिकोण की द्वितीय पंक्ति में संख्यायें हैं 1,2,1। इसी तरह, तीन सिक्कों को उछालने का परिणाम पास्कल के त्रिकोण की तृतीय पंक्ति की संख्याओं 1,3,3,1 से ज्ञात किया जा सकता है।

एक प्रतिभा

गणित के विश्व में, पास्कल अल्प–जीवन वाली प्रतिभाओं में से एक हैं जो अचानक ही पृथ्वी से लुप्त हो गये और अपने पीछे एक चमकीला चरणचिह्न छोड़ गये जो हमें आने वाले कई वर्षों तक सम्मोहित करता रहेगा। इस प्रकार उन्हें बेरनहार्ड रैमन (1826–1866), श्रीनिवास रामानुजम (1887–1920) आदि के वर्ग में रखा जा सकता है। अपने रोगग्रस्त संक्षिप्त जीवन में पास्कल द्वारा किया गया पथप्रदर्शक कार्य हमें कई–कई वर्षों तक प्रकाश गृह के समान मार्ग दिखाता रहेगा।

संदर्भ

1. *वी.ए. उसपेंस्की:* पास्कल्स ट्राएंगल, सर्टेन एप्लीकेशन्स ऑफ मैकेनिक्स टू मैथमेटिक्स; मीर प्रकाशन, मास्को, 1979।
2. *एस. होलिनग्डेले:* मेकर्स ऑफ मैथमेटिक्स: पेंग्विन बुक्स, 1989

* अध्यापक बरासत सत्यभारती विद्यापीठ पोस्ट– नबापल्ली, जिला– उत्तरी 24 परगना, पिन– 743 203

• • •